VISHL BHART

G. K. U. 1953

मार्च
विशाल-भारत
१९५६
सम्पादक—श्रीराम शर्मा
080295

पाठकोंको सूचना—

विशाल भारतका
मूल्य निम्नलिखित है :—

वार्षिक चन्दा	६)
छमाही	५)
एक प्रति	॥।)
विदेशके लिए	
वार्षिक चन्दा	१४)
छमाही	७)
एक प्रति	१।)

नमूनेकी प्रति मुफ्त नहीं भेजी जाती ।
नमूनेकी प्रतिके लिए ॥।~) आनेका डाक टिकट भेजना चाहिए।

—मैनेजर

विषय-सूची मार्च, १९५६

१. सम्पादकीय विचार— १३७

आलोचनाएं—

२. इस अंककी चार कहानियां—दुर्गाशंकर मिश्र १४२

कहानियां—

३. बड़े दिनका उपहार—ओ' हेनरी १४५
४. मिलन—शिवकुमार उपाध्याय १४९
५. केवल तीन आने—स्वतन्त्र चोपड़ा १५३
६. शिथिलताका एक क्षण—गायत्री सक्सेना १५५

कविताएं—

७. रोती हो—अंचल १५८
८. एक गीत—जानकी प्रसाद 'शरद' १५९
९. प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको—शिवशंकर वशिष्ठ १६०
१०. जलदसे धरा—जयदेव अम्बष्ठ 'मधुकर' १६१
११. किन्नरी-सी चाँदनी—शलभ १६२
१२. मिलनकी रात—रमाशंकर सक्सेना १६३
१३. गीत—ब्रजेन्द्रपाल सिंह १६४
१३. गीत—मनमोहन 'सरल' १६४
१४. हे वसन्तके दूत—गोविन्द श्रीवास्तव १६५
१५. गीत—सुरेन्द्र मोहन मिश्र १६६

विविध—

१६. फ्रेंच रिवियेरा और एल्पस—ए० एन० सेन १६७
१७. भगवान बुद्धका जन्मस्थान : लुम्बिनी—भिक्षु जगदीश कश्यप १७१
१८. विज्ञान-चैतन्य—आचार्य सर्वे १७४
१९. तानसेनकी रचनाओंपर नवीन ऐतिहासिक प्रकाश—चन्द्रशेखर पन्त १७५
२०. भारतीय-विद्याविद् : अलेक्षी बारान्निकोव—वी० वीरोव्ये—देस्यातोव्रस्की १८०

साहित्यिक लेख

२१. काव्यके कलापक्ष और भावपक्ष—ब्रजकिशोर सिन्हा १८२
२२. चप्पल चोरी—महादेव शाहा १८४
२३. उपन्यासके प्रकार—महेन्द्र भटनागर १८६
२४. 'वर्षान्तके बादल'के कवि 'अंचल'—भुवनेश्वरी प्रताप श्रीवास्तव १८९
२५. इस अंककी कविताओंकी समीक्षा—उदयभानु मिश्र 'भानु' १९३
२६. समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार १९७
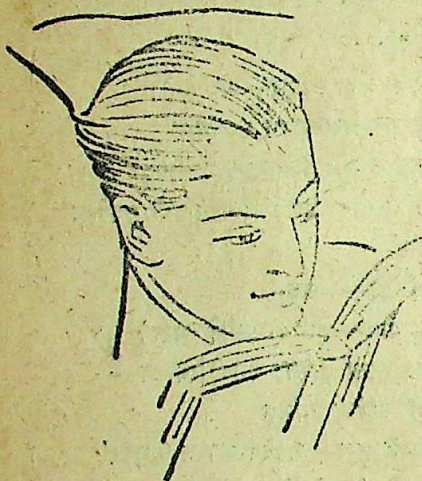
ग्राहकों को सूचना

पुराने ग्राहकोंसे निवेदन है कि जिस अङ्कके साथ उनका चन्दा समाप्त हो जाये, उस अंककी प्राप्तिके साथ-साथ वे अगले वर्षका चन्दा भेज दें। यदि आगे ग्राहक न रहना हो तो इसकी सूचना अवश्य दे दें, अन्यथा ऐसा समझा जायेगा कि वे ग्राहक रहना चाहते हैं और उनके नाम वी॰ पी॰ भेज दी जायेगी। पत्र या रुपया भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें। ऐसा न करनेसे बहुत परेशानी होती है, और काममें वृथा विलम्ब होता है।

—मैनेजर "विशाल भारत"

उजबक नर्तकियोंका लोक-नृत्य
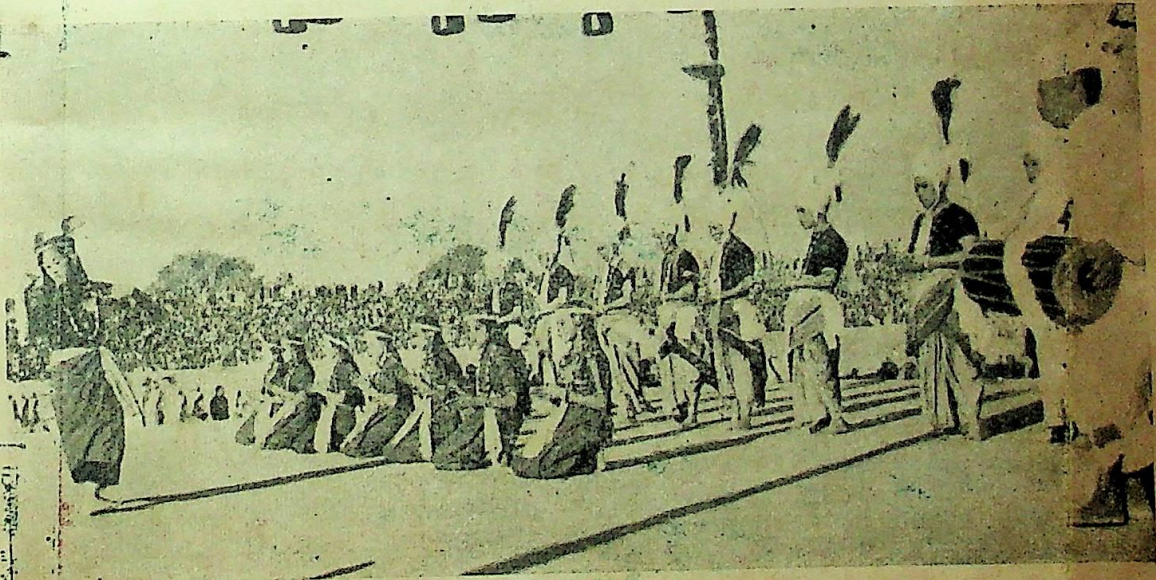
प्रजातन्त्र-दिवसपर मनीपुरी लोक-नृत्य

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

कुम्भकार

[श्री नीहाररंजन सेनगुप्त

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"
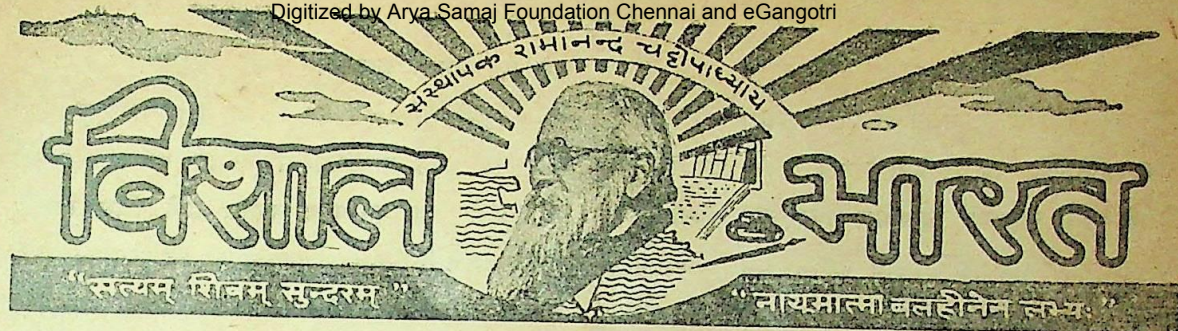
भाग, ५७ अंक ३] कलकत्ता, मार्च, १९५६ [पूर्णांक ३३९

सम्पादकीय विचार

भारतकी आत्माका संकट

गत कई मासकी घटनाओंकी प्रतिक्रिया कुछ इस ढंगकी रही है कि हमारे नेताओंको यत्र-तत्र कहना पड़ा है कि भारतकी आत्मा संकटमें है। इस सम्बन्धमें श्री जवाहरलाल नेहरूने एक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है :—'हम लोग बातें अब भी पहलेकी तरह उदात्त शब्दोंमें करते हैं, किन्तु हमारे कार्म कुछ और ही होते हैं। बातें हम शान्ति और अहिंसाकी करते हैं, लेकिन काम हम दूसरी ही तरहसे करते हैं।... हमारी नयी पीढ़ीके सामने कोई मान नहीं रह गये; उसके पास कोई चीज नहीं है, जो उसके सोचने और कामको नियन्त्रित करे...' वस्तुतः बात कुछ उल्टी कही गयी है, क्योंकि नयी पीढ़ीके सामने जो मान हैं, वे इतने ऊंचे और सच्चे हैं कि उनसे मापनेपर पुरानी पीढ़ीके बड़े-बड़े नेता भी पानी भरते नजर आते हैं। नयी पीढ़ी नहीं चाहती कि घूसखोरी, स्वजन-पोषण, चोरबाजारी आदिका बाजार आज भी गर्म रहे। वह जानती है कि पुरानी पीढ़ीके लोग गुलामीके जमानेमें इन बुरी आदतोंके शिकार बन गये हैं और आज तक उन्हें त्याग नहीं पाये—ये आदतें दूर हों, इसके लिये वह बेचैन है और जब-तब यह बेचैनी आन्दोलनके रूपमें प्रकट होती रहती है। हम अपने नेताओंसे पूछना चाहते हैं, क्या वे यह नहीं जानते कि आज भी अदालतों थानों आदिमें घूसखोरीका बाजार पूर्ववत् ही चल रहा है? इसके लिये क्या नयी पीढ़ी उत्तरदायी है या ऐसी घृणित स्थितिके विरुद्ध यदि वह आन्दोलन करती है तो भारतकी आत्माको संकटमें डालती है? नयी पीढ़ी आज सत्य, न्याय तथा अहिंसाके लिये जितनी अधीर है, उतनी अधीरता क्या पुरानी पीढ़ीमें है? आज पुरानी पीढ़ी नव-निर्माणके लिये अधीर हो रही है, पर क्या उसने कभी सोचा है कि नव-निर्माणके बड़े-बड़े बांध आजकी बढ़ी-चढ़ी घूसखोरी और भ्रष्टाचारके कारण सीमेण्ट तथा फौलादसे न बनाये जाकर बालू और कच्चे-लोहेसे खड़े कर दिये जायेंगे और किसी भी कड़े धक्केसे ढह जायेंगे। नयी पीढ़ीकी अनुशासनहीनता हमें दुख देती है सही, किन्तु आज वे हृदय-विजयी नेता कहां हैं, जिनका जीवन नयी पीढ़ीके लिये आदर्श बन सकता था। आजके नेता त्याग कहां करते हैं? वस्तुतः उन्होंने जो त्याग अतीतमें किया है, उसीको वे आज सुख-सुविधामें बदल रहे हैं। यह सही है कि सभी ऐसे नहीं हैं और आज भी इनेगिने महान पुरुष जन-सेवामें लगे हैं—नेहरू जी भी उनमें एक हैं; किन्तु जब वे वर्तमान संकटके लिये नयी पीढ़ीको दोष देते हैं तो हमें कहना ही पड़ता है कि अपनी पीढ़ीके प्रति उन्हें जो सहज मोह है, वह उन्हें यह स्वीकार करने नहीं देता कि भारतीय आत्माका संकट नयी पीढ़ीके कारण नहीं, किन्तु पुरानी पीढ़ीके कारण है। यह पीढ़ी यदि अपनेको सुधार ले तो सभी समस्याएं हल हो सकती हैं।

काश्मीरका बंटवारा

पाकिस्तानके सामने काश्मीरके बंटवारेका जो प्रस्ताव नेहरू जीने रखा, वह एक ऐसा प्रस्ताव है कि पाकिस्तानको उसमें अपनी चालबाजी दिखानेका अवसर नहीं मिल सकता। यों पाकिस्तान अब तक समझौते करनेमें कभी पीछे नहीं रहा, पर समझौतोंकी शर्तोंको मानकर चलना उसने सीखा ही नहीं। कितनी ही बार उसने वादा किया कि पूर्वी बंगालके हिन्दुओंके प्रति उन व्यवहारोंको रोका जायेगा, जिनके कारण उन्हें शरणार्थी बन भारत आना पड़ रहा है; किन्तु उसका वादा कभी सच्चा नहीं रहा। पूर्वी बंगालके हिन्दुओंको आज भी अपने सम्मान तथा सम्पत्तिकी रक्षाके लिये भागना पड़ रहा है। पाकिस्तानकी नीति सदा समझौताकर धोखा देनेकी रही है और जहां धोखा देनेका अवसर नहीं होता, वहां वह समझौता ही नहीं करता। काश्मीरके बंटवारेमें धोखा देनेका अवसर नहीं है, इसीलिये बंटवारेके प्रस्तावको उसने तुरन्त ठुकरा दिया है। काश्मीरका बंटवारा तो एक प्रकारसे हो ही गया है और इसके लिये भारतीयोंको गहरा दुख है। यह दुख भारतके विभाजनके दुखसे जरा भी कम नहीं है। यह विभाजन किन्तु वैधानिक या सच्चे आधारपर नहीं हुआ। युद्ध-घोषणा किये बिना ही पाकिस्तानने काश्मीरपर जो लज्जाजनक हमला किया, उसीका परिणाम यह बंटवारा है। इसमें विदेशियोंका हाथ भी रहा, क्योंकि बादमें शेख अब्दुल्ला द्वारा काश्मीरको एक स्वतन्त्र राज्य घोषित करनेके प्रयत्न तथा पाकिस्तानको अमेरिकी अस्त्र-शस्त्रोंकी सहायतासे स्पष्ट है कि विदेशी काश्मीरमें कितनी दिलचस्पी ले रहे हैं। भारतने विदेशियोंकी नियतपर कभी अविश्वास नहीं किया, इसीलिये उनके आग्रहपर वह काश्मीरके मामलेको संयुक्त राष्ट्र संघमें ले गया और काश्मीरमें जन-मत लेकर उसे भारत या पाकिस्तानमें सम्मिलित करनेका प्रस्ताव रखा। इस प्रस्तावके साथ यह शर्त अवश्य रही कि पाकिस्तान अपनी सेना काश्मीरसे हटा लेगा तभी जन-मत लिया जायेगा। पाकिस्ताकने अपनी सेना हटाना अब तक स्वीकार नहीं किया, अतः जन-मत भी नहीं लिया जा सका। अब जब संयुक्त राष्ट्र-संघके एक गुट्टने पाकिस्तानको अपने गुट्टमें सम्मिलित कर लिया है; तो गुट्टबाजीके कारण वह सर्वत्र पाकिस्तानका समर्थन करेगा, यह भी निश्चित है। जन-मत ग्रहण करनेके लिये जिस स्वतन्त्र तथा साधारण स्थितिकी आवश्यकता थी, वह अब नहीं रही, इसीलिये भारतने काश्मीरमें जन-मत ग्रहण करनेके प्रस्तावको अवास्तव घोषित कर दिया है। पाकिस्तानके प्रति भारतीय नीतिका यह रुख भारतमें सर्व-प्रिय बना, क्योंकि पाक-नीति प्रारम्भसे ही भारतकी उदार-नीतिकी छत्रछायामें अपनी घृणित साम्प्रदायिकताको शक्ति प्रदान करती आ रही है। उसकी घृणित नीतिको शक्ति न मिले, इसके लिये यह आवश्यक था कि भारत अपनी उदार-नीति त्याग दे। काश्मीरमें जन-मत ग्रहण न करनेकी घोषणासे आशा हुई थी कि पाकिस्तानके प्रति अब हमारी नीति बदल रही है; किन्तु नेहरू जीके बंटवारेके प्रस्तावसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी हमारी उदारताका लाभ पाकिस्तान कुछ दिनोंतक और उठायेगा। हम उदारताके समर्थक हैं, किन्तु हमारी दृष्टिसे राजनीतिमें उदारताकी एक सीमा होनी चाहिये। क्या हम आशा रखें कि हमारे प्रधान-मन्त्री उस सीमाका निर्धारण करेंगे?

मि० डालेसका एशियाई दौरा

अमेरिकाके परराष्ट्र-मन्त्री, मि० जान फास्टर डालेस दस ऐशियाई राजधानियोंमें पदार्पण करनेके बाद अमेरिका पहुंच गये हैं। वहां उन्होंने अपने एशियाई दौरेके सम्बन्धमें जो वक्तव्य दिया है, वह अमेरिकियोंको भ्रममें डालनेवाला है। उनके प्राप्त अनुभवोंपर ही अमेरिकी नीतिका आधार रहा तो एशियाका बड़ा भाग अवश्य ही अमेरिकाको सन्देहकी दृष्टिसे देखता रहेगा। एशियाके देश पिछड़े हुए हैं, उन्हें सहायताकी जरूरत है आदि प्रवचन पहले भी एशियावाले साहबोंसे सुन चुके हैं और परेशान हो चुके हैं, अतएव वे सम्राज्यवादके ऐसे जालोंमें अब न फंसना चाहेंगे। मि० डालेस अपने वक्तव्यमें कहते हैं कि बहुतेरे एशियाई देश अनुभव करते हैं कि उनकी स्वतन्त्रता अधिक सुरक्षित तभी हो सकती है,

यदि वे हमारे साथ उभय-पक्षी प्रतिरक्षा व्यवस्थामें भाग लेते हैं। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि एशियाई देश यह निश्चितरूपसे चाहते हैं कि अमेरिका शक्तिशाली हो और उसकी वह शक्ति अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रोंपर एक सुरक्षा-छत्रकी भांति छायी रहे। उनके इस अनुभवको भारत, हिन्देशिया, जापान, लंका, बर्मा तथा कम्बोडिया अवश्य ही अपना अपमान समझेंगे, क्योंकि वे अपनी सुरक्षा अपने बलसे ही कर सकनेका दृढ़ विश्वास रखते हैं। फारमोजा, दक्षिणी वेतनाम तथा दक्षिणी कोरियाकी सरकारें अमेरिकी सहायता चाहती हैं सही, किन्तु वहांकी जनता क्या चाहती है? सभी जानते हैं, वहांकी जनता गुलामीसे ऊब गयी है और वहां भी एक न एक दिन जनताकी आवाज एक भयंकर विस्फोटके रूपमें प्रकट होगी। रही पाकिस्तानकी बात, उसके सम्बन्धमें नेहरू जीने स्पष्ट ही कह दिया है कि वह अमेरिकी सैनिक सहायता केवल अपनी भारत विरोधी नीतिके कारण ही ले रहा है। पाकिस्तान तथा अन्य एशियाई देशोंकी जनता ऐसी सैनिक सहायता नहीं चाहती, यह फ्रान्सीसी परराष्ट्र-सचिव श्री पिनोंने अपने कराचीके भाषणमें सस्पष्ट करते हुए कहा था कि ऐसी सहायता कुछ नेता इसलिये चाहते हैं, जिससे वे अपनी गद्दीपर बैठे रह सकें। पाकिस्तानकी स्थिति भी कुछ ऐसी ही है और वहांके कई नेता अमेरिकी सैनिक मददपर टिके हुए हैं। भारतमें आकर मि० डलेसने विश्वास दिलानेका प्रयत्न किया था कि पाकिस्तानको जो अमेरिकी अस्त्र-शस्त्र मिले हैं, उनका प्रयोग वह केवल उत्तरी आक्रमणसे आत्मरक्षा करनेमें करेगा। किन्तु हालकी घटनाओंसे यह स्पष्ट हो गया है कि पाकिस्तान इन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग भारतके विरुद्ध कर रहा है और करेगा भी। इतना सब होते हुए भारतके प्रधान-मन्त्रीको अमेरिकी प्रेसीडेण्टका निमन्त्रण मिला है, ऐसे निमन्त्रणको क्या महत्व दिया जा सकता है?

लंकाकी नीतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन

लंकाके निर्वाचन परिणामोंसे लगभग सभीको आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ा है। लंकाके वर्तमान प्रधान-मन्त्री सर जान कोटेलावाला तथा उनकी 'यूनाइटेड नेशनलिस्ट पार्टी'को निर्वाचनमें सफलताकी आशा थी; पर उनकी जैसी बुरी हार हुई, वैसी हारकी कल्पना भी किसीने न की थी। निर्वाचनके जो परिणाम प्रकाशित हुए हैं, उनसे ज्ञात हुआ है कि ९५ में केवल ८ स्थान सरकारी दलको मिले हैं। दूसरी ओर उनके विरोधी श्री बन्दरनायककी 'महाजन एक साथ पेरामुना' दलको पूरी सफलता मिली है और उसने १०१ स्थानोंमें ५१स्थान प्राप्त कर लिये हैं। इस दलके साथ संयुक्त मोर्चा बनानेवाले दल हैं, 'ट्रोटस्काइट नव लंका समाज' तथा कम्युनिस्ट पार्टी, जिन्हें क्रमशः १४ तथा २ स्थान मिले हैं। लंकाकी पार्लमेण्टके १०१ स्थानोंमें उपर्युक्त संयुक्त-मोर्चेने ६५ स्थान प्राप्त करके बहुमत प्राप्त कर लिया है, अतएव श्री बन्दरनायकका मंत्रिमण्डल बनना निश्चित-सा हो गया है। उनकी नीति नेहरूकी नीति होगी, यह घोषणा उन्होंने कर दी है। इसका निश्चित परिणाम यह होगा कि लंकामें सैनिक या नौ-सैनिक अड्डे बनानेके जो स्थान पूर्वमें पश्चिमी शक्तियोंको मिले थे, वे छिन जायेंगे। पश्चिमी राष्ट्रोंको यह भय भी है कि रबड़ तथा चाय बगीचोंके उद्योगोंका राष्ट्रीय-करण सम्भवतः शीघ्र हो जाये। यह एक प्रकारसे निश्चित भी है, क्योंकि श्री बन्दरनायक नेहरूके समाजवादी ढंगको अपनाना चाहते हैं। फिर भी उन्होंने राष्ट्रीयकरणकी नीतिमें हर्जाना देना स्वीकार किया है, जिससे पश्चिमी देशोंके उद्योगपतियोंकी घबराहट कुछ कम हुई है। हमें आशा है श्री बन्दरनायककी सफलता भारत तथा लंकाकी मित्रताको और भी घनिष्ठ बना देगी।

कम्युनिस्ट पार्टीकी बीसवीं कांग्रेस

सोवियत संघकी कम्युनिस्ट पार्टीकी बीसवीं कांग्रेस एक महत्वकी घटना है। इसका अधिवेशन फरवरी १९५६ में हुआ। इस कांग्रेसमें जिन समस्याओंपर विचार-विमर्श हुआ, सारे संसारके लिये भी उनका भारी महत्व है। इसमें समाज-वादी एवं पूंजीवादी पद्धतियोंके आधारभूत भेदोंका सुस्पष्ट एवं सांगोपांग विवेचन किया गया और कहा गया कि हमारे युगकी मुख्य विशिष्टता इस बातमें है कि समाजवाद

एक देशकी सीमाएं पारकर अब एक जागतिक पद्धतिके रूपमें विकसित हो गया है और अधिकाधिक शक्तिशाली हो रहा है। पूंजीवादका प्रभाव-क्षेत्र संकुचित हो गया है तथा पूंजीवादी व्यवस्थाके अन्तर्विरोध निरन्तर अधिकाधिक रूपमें प्रकट हो रहे हैं यह सब होते हुए भी दोनो व्यवस्थाओंका सहअस्तित्व कोटि-कोटि जनगणके जीवन्त हितमें है। संसारमें आज ऐसी एक भी जाति नहीं है, जो युद्ध चाहती हो। दो व्यवस्थाओंके सह-अस्तित्वको समस्याको जो इतना उग्र बनाता है, वह है प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी शक्तियोंका अस्तित्व। वे यह सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील हैं कि समाजवाद और पूंजीवादका सहअस्तित्व असम्भव है। शान्तिपूर्ण सहअस्तित्वका सिद्धान्त समाजवादी व्यवस्थाके सारभूत तत्वसे उद्भूत होता है। युद्ध उन लोगोंके लिये, जरूरी है, जो किसी तरहका साम्राज्य चाहते हैं। समाजवादको युद्धोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे सृजनात्मक प्रयासोंमें बाधाएं पैदा करते हैं। दूसरी ओर पूंजीवादी पद्धतिके साथ शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगितामें समाजवाद कहीं भी पीछे नहीं रहता। सोवियत संघ तथा समस्त जनतंत्री देशोंकी यह धारणा है कि विभिन्न पद्धतियोंका साथ-साथ रहना और आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धोंका विकास होना, राष्ट्रोंके जीवित हितोंमें हैं। क्या हमारे युगमें युद्धको रोकना सम्भव है? सोवियत संघकी कम्युनिस्ट पार्टीकी २०वीं कांग्रेसमें उठाया गया यह प्रश्न असाधारण महत्व रखता है। सभी जानते हैं कि मुनाफेकी ऊंची-से-ऊंची रकमें प्राप्त करनेके उद्देश्यसे नये बाजार पाने और पूंजी लगानेके नये क्षेत्र प्राप्त करनेका सतत प्रयत्न साम्राज्यवादी युद्धोंका मूल कारण है। इसके फलस्वरूप, जब तक साम्राज्यवाद है, तब तक युद्धकी आर्थिक बुनियाद कायम रहती है। किन्तु वर्तमान परिस्थितिमें युद्ध बहुत दूर तक, अवश्यंभावी नहीं। आज ऐसी वास्तविक सामाजिक शक्तियां वर्तमान हैं, जो साम्राज्यवादियों द्वारा युद्धका छेड़ा जाना रोक सकती हैं। इनमें सर्वप्रथम, शक्तिशाली समाजवादी शिविर है, जिसके अन्दर ११० करोड़से ऊपर मनुष्य और विपुल भौतिक साधन हैं। इसके अतिरिक्त अन्य शांतिप्रेमी राज्योंका अस्तित्व है, जिनमें भारत, बर्मा, हिन्देशिया तथा मिस्र प्रमुख हैं। यदि ये सभी युद्ध-विरोधी शक्तियां सजग एवं संघटित रहें, यदि वे शांति-रक्षार्थ संयुक्त-मोर्चेपर काम करें तो दृढ़-निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि युद्ध नहीं होगा। सोवियत संघकी कम्युनिस्ट पार्टीकी केन्द्रीय समितिने अब समाजवादकी ओर अग्रसर होनेके विभिन्न तरीके और अनगिनत रूप अपनाये जानेकी स्थापनाको मान लिया है। वी० आई० लेनिनने भी कहा है कि सभी राष्ट्र समाजवादके लक्ष्य तक पहुंचेंगे, पर उनके पहुंचनेका रास्ता हुबहू एक न होगा। ऐतिहासिक अनुभव द्वारा इसकी पूर्णतः पुष्टि हो चुकी है। हमारे ही युगमें, समाजके समाजवादी पुनर्गठनके सोवियत रूपके साथ ही जनताके जनतन्त्रका रूप भी है, जो अपना औचित्य पूर्णतः प्रमाणित कर चुका है। इसके अतिरिक्त, हर जनतन्त्रमें हर देशकी ठोस ऐतिहासिक अवस्थाओंसे उत्पन्न विविध भेद एवं प्रभेद हैं। ऐसा निश्चय ही कोई नियम नहीं कि समाजवादी पुनर्गठनकी प्रक्रियामें गृहयुद्ध, क्रान्तिकारी हिंसाका प्रयोग आदि अनिवार्य हों। बीसवीं कांग्रेसने यह भी बताया है कि शोषक वर्गोंके प्रति मजदूर वर्गका बलप्रयोग मुख्यतः शोषकोंके बल प्रयोगपर निर्भर करता है। यों पूंजीवादी देशोंमें मजदूरा वर्ग संसदमें स्थायी बहुमत प्राप्तकर शान्तिपूर्ण ढंगसे सत्ता प्राप्तकर सकता है। हमारी दृष्टिमें उपर्युक्त दृष्टिकोण सही है।

स्टालिन और व्यक्ति पूजा

सोवियत संघकी कम्युनिस्ट पार्टीकी बीसवीं कांग्रेसने मार्क्स-लेनिनवादी भावना-विरोधी व्यक्ति पूजाकी निन्दा की है और केन्द्रीय समितिकी रिपोर्टपर कांग्रेसके प्रस्तावमें कहा गया है कि 'पार्टीके सदस्यों तथा सामान्यतया श्रमिक जनताकी क्रियाशीलताको आगे बढ़ानेके लिये इतिहासमें व्यक्तिपूजाकी भूमिका-सम्बन्धी मार्क्स-लेनिनवादी धारणाकी सांगोपांग व्याख्या भारी महत्व रखती है। कांग्रेसका विचार है कि व्यक्तिपूजापर प्रहार करना केन्द्रीय समितिके लिये पूर्णतः उचित था। व्यक्तिपूजाने पार्टी और जनसमुदायकी

भूमिकाकी निन्दा की तथा पार्टीके सामूहिक नेतृत्वकी भूमिकाको घटा दिया, फलस्वरूप पार्टीके कार्यकलापमें बहुधा गम्भीर भूलें हुई। यह कांग्रेस केन्द्रीय समितिको व्यक्तिपूजाके अवशेषोंके विरुद्ध अपने संघर्षमें ढिलाई न करनेका तथा अपने समस्त कार्यकलापोंमें इस धारणाको आधार मानकर चलनेका आदेश देती है कि नये जीवनकी वास्तविक निर्माता जन-समुदाय है, जिसका नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी करती है। यह प्रस्ताव स्टालिनके विरुद्ध न होकर व्यक्तिपूजाके विरुद्ध है। व्यक्तिपूजा अतिमानवी विशिष्टताओं और गुणोंका किसी एक व्यक्तिपर आरोप करती है और उन्हें प्रायः चमत्कारी पुरुष बना देती है, जिससे उनकी पूजा होने लगती है। जे० बी० स्टालिनके विषयमें मार्क्स-लेनिनवादी भावना-विरोधी ऐसी गलत धारणाएं रूसमें कई वर्षोंसे विकसित एवं सम्बर्द्धित हुई। यह अकाट्य बात है कि जे० बी० स्टालिनने रूसी कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलनकी महती सेवाएं कीं ; लेकिन नेतृत्व सम्बन्धी उनके व्यावहारिक प्रयोगोंने विकसित होकर व्यक्तिपूजाका रूप ले लिया। मार्क्स-लेनिन-वादकी सफलता, देशभक्तिपूर्ण युद्धमें विजय, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिकी पृष्ठभूमिमें स्टालिनकी पूजाका उदय और विकास हुआ। इतिहास द्वारा अनुसन्धानित मार्क्सवाद-लेनिनवादके नियमोंके आधारपर, नूतन समाजके निर्माणमें सोवियत जनता द्वारा प्राप्त की गयी सफलताओंकी आवश्यक और सही मार्क्स-लेनिनवादी व्याख्या नहीं की गयी वरन् उनका श्रेय गलत तरीकेसे केवल एक आदमी—स्टालिनको दिया गया। अपने चरित्रमें शीलके अभावके कारण स्टालिनने उन प्रशस्तियों तथा महिमा गानोंको, जो उन्हें सम्बोधित किये गये थे, रोकनेके बदले हर तरहसे प्रोत्साहित किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, व्यक्तिपूजाके इस सिद्धान्तने उत्तरोत्तर अधिकाधिक वीभत्स रूप धारण कर लिया और लक्ष्यको भयंकर नुकसान पहुंचाया। यह स्वतः सिद्ध है कि जे० बी० स्टालिनका ऐसा व्यवहार नेतृत्वके लेनिनीय सिद्धान्तोंका उल्लंघन था।'

व्यक्ति पूजाकी कोई भी अभिव्यक्ति मार्क्स-लेनिनवादके संस्थापक मार्क्स, एंगेल्स और लेनिनके लिये एक विजातीय एवं घृणित वस्तु रही है। इस सम्बन्धमें प्रवदाने अपने अग्रलेखमें लिखा है, 'स्टालिनके जीवन और कृतित्वके अन्तिम चरणमें व्यक्तिपूजाका जो सिद्धान्त चल पड़ा और उसके प्रभावसे नेतृत्वकी जो कार्यप्रणाली विकसित हुई, उसने बड़ा नुकसान पहुंचाया। उनके द्वारा पार्टी-जीवनके मानदण्डों और सामूहिक पार्टी नेतृत्वके सिद्धान्तकी अवहेलनासे तथा प्रश्नोंपर व्यक्तिगत निर्णय कर लेनेसे, पार्टी सिद्धान्तों और पार्टी जन-तन्त्रका विकृतीकरण हुआ। बेरिया जैसा कट्टर साम्राज्यवादी दलाल और उसके संगी-साथी व्यक्ति-पूजा और उससे सबंधित पार्टी जीवनके मानदण्डोंके उल्लंघनके फलस्वरूप ही पार्टी और सरकारके अन्दर नेतृत्वके स्थानोंमें पहुंच सके। केन्द्रीय समिति द्वारा गद्दार बेरिया-गिरोहका परदा फाश किये जानेसे ही समाजवादी कानूनके उल्लंघनोंका उन्मूलन हुआ और समाजवादी कानूनके मानदण्डों और सिद्धान्तोंको पुनः स्थापित किया जा सका। व्यक्तिपूजाके विरुद्ध केन्द्रीय समिति और पार्टीकी बीसवीं कांग्रेसकी दृढ़ कार्रवाई लोगोंमें इस सिद्धान्त द्वारा होनेवाले नुकसानकी व्याख्या करनेका सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व रखता है।'

हम व्यक्तिपूजा विरोधी सोवियत संघकी कम्युनिस्ट पार्टीकी बीसवीं कांग्रेसके पास हुए प्रस्तावको मनन करनेके बाद इस निर्णयपर पहुंचे हैं कि व्यक्तिपूजा यदि सही नहीं है तो पार्टी-पूजा भी सही नहीं है। रूसमें प्रत्येक सफलताका श्रेय कम्युनिस्ट पार्टीको क्यों दिया जाता है? व्यक्ति तथा पार्टी पूजाको एक ही रोलरसे रौंदा जाये तो हमें सन्तोष हो सकता है ; किन्तु व्यक्ति-पूजाकी निन्दा की जाये और पार्टी-पूजाकी प्रशस्ति की जाये, यह सत्यको स्वीकार नहीं हो सकता। इस असत्यको सत्य सिद्ध करनेके लिये जो महान प्रयास हो रहा है, उसका सही कारण क्या है? उत्तर कठिन अवश्य हो सकता है, किन्तु इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि जिन्होंने स्टालिनकी पूजा की थी, वे या तो मेटे जा चुके हैं या मेटे जानेवाले हैं।

हमारे प्रतिष्ठित सम्पादक, श्री श्रीराम शर्मा अस्वस्थ हैं, अतएव सम्पादकीय स्थानापन्न सम्पादक, श्री आदित्य अवस्थी द्वारा लिखा गया है।

—व्यवस्थापक

इस अंककी चार कहानियां

दुर्गाशंकर मिश्र

आर० के० लागू एम० ए० ने अपनी पुस्तक Introduction to modern stories from east & West में एक स्थलपर लिखा है—The story teller has found a warm welcome and an eager oudience in all ages and all countries. young and old, the culured and the illiterate:every one succumbs craving for a story is ingrained in us. it is conseqence of this that the story-telling tradition has suffered no break at any time and flourished alike in the east and west. अर्थात् सभी कालोंमें और सभी देशोंमें कहानीकारका हर्षपूर्वक स्वागत हुआ है और उसे हमेशा ही उत्सुक समुदाय स्वागतार्थ उपस्थित होता हुआ दृष्टिगोचर हुआ है। युवा और वृद्ध, सुसंस्कृत और असंस्कृत प्रायः सभी श्रेणियोंके व्यक्ति कहानीकारके कृतित्व द्वारा मुग्ध होनेके हेतु उत्सुक हैं। कहानीका अंकुर हम सभीमें विद्यमान हैं। इसीका फल है कि कहानीकी परम्पराका कभी ह्रास नहीं हुआ और पूर्व तथा पश्चिम दोनोंमें इसकी धारा समान गतिसे प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा साहित्य ही अन्य सभी साहित्यके अंग-उपांगोंमें अधिक गतिशील है। हिन्दी कथासाहित्यकी दिन प्रतिदिनकी प्रगतिको देखते हुए हमारी इस धारणाकी पुष्टि ही होती है।

'विशाल भारत'के प्रस्तुत अंककी पहली कहानी ओ' हेनरीकी 'बड़े दिनका उपहार' है। यहां यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि इस कहानीका अनुवाद इसके पूर्व भी एक दो बार हो चुका है, परन्तु यह कथा इतनी सुन्दर है कि इसे बार-बार पढ़नेकी लालसा होती है और कदाचित इसीलिये इसका यह अनुवाद प्रकाशित हुआ है। बड़े दिनका उपहार एक उद्देश्यपूर्ण कहानी है तथा वह एच० जी० वेल्सके Short story aims at a single concentrated impression नामक कथनको चरितार्थ करती है। 'बड़े दिनका उपहार' एक रोमांसवादी कथा नहीं है और न उसमें शुद्ध यथार्थकी ओर ही झुकाव देख पड़ता है अपितु इस छोटी-सी कथामें यह दिखलानेकी चेष्टा की गयी है कि सच्चे प्रेमी प्रमिका, किसी भी परिस्थितिमें क्यों न हों, उनका प्रेम कभी कम नहीं होता। वस्तुतः प्रेममें अन्य सभी आकर्षण गौण ही रहते हैं और प्रेम केवल हृदय देखता है। एलिसने जिमको उपहार देनेके हेतु अपने उन सुन्दर सुनहले केशोंको कटवा दिया, जो कि किसी भी नारीकी सुन्दरतामें वृद्धि करते हैं। एलिस एक साधारण नारी नहीं प्रतीत होती, क्योंकि वह अपने प्रियको उपहार देना अत्यन्त आवश्यक समझती है और अपने बाल तक कटवा लेती है। उधर जिमकी हृदयगत भावना भी सराहनीय है, क्योंकि उसे अपनी प्रेमिका द्वारा दी गयी घड़ीको बेंच देनेके लिये विवश होना पड़ता है। कोई भी सच्चा प्रेमी यह स्वीकार न करेगा कि वह अपनी प्रिया द्वारा दी गयी प्रेमकी भेंटको खोदेनेका सहस करे। जिमको उस घड़ीके बेचते समय स्वाभाविक ही पीड़ा हुई होगी। कुछ लोग यह आपत्ति कर सकते हैं कि प्रस्तुत कहानी कोरी रोमांसवादी कथा ही है और इसमें जीवनके किसी गम्भीर तथ्यका निरूपण नहीं किया गया, परन्तु हम इस तर्कसे किसी भी भांति सहमत नहीं हो सकते। यदि हम कहानीका सावधानीपूर्वक अनुशीलन करें तो स्पष्ट विदित होता है कि जिमने घड़ी इसीलिये बेची, क्योंकि उसके पास एलिसको उपहार देनेके लिये या किसी वस्तुको खरीदनेके लिये पैसा न था। धन तो प्रेमके मध्य दीवारकी भांति खड़ा रहता है और जहां [illegible] कुछ कर सकते हैं, वहां

बेचारे निर्धन अपनी 'प्रेमकुटी'का भी निर्माण नहीं कर पाते। क्या उन्हें प्रेम करनेका अधिकार नहीं है ? इस प्रकार हम इस कहानीको महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि इसमें जीवनकी गम्भीर समस्याओंका चित्रण है। फिर श्री आनन्दनारायण शर्माको हम इतना सुन्दर अनुवाद करनेके लिये बधाई देते हैं, परन्तु साथ ही हमारा उनसे यह भी अनुरोध है कि वे कुछ ऐसी पाश्चात्य कहानियोंका अनुवाद प्रस्तुत करें, जिनका कि अभी तक हिन्दीमें अनुवाद नहीं हुआ।

श्री शिवकुमार उपाध्यायकी 'मिलन' तथा श्री स्वतन्त्र चोपड़ाकी 'केवल तीन आने' नामक कहानियां क्रमशः द्वितीय और तृतीय क्रमसे प्रकाशित हुई हैं, परन्तु इन दोनों कहानियोंका अध्ययन कर हम यही नहीं समझ पाये कि इनमें वस्तुतः कहानी कलाकी प्रतिच्छाया भी है या नहीं। उपाध्याय जीकी कहानी 'मिलन' निश्चय ही एक साधारण-सी फिल्मी कथा है और उसमें मानव-जीवनकी किसी गम्भीर समस्याका चित्रण नहीं है। हम प्रेम कहानियोंको हेय नहीं मानते, क्योंकि प्रेम भी जीवनका अनिवार्य तत्व है; परन्तु अस्वाभाविकता तो किसी भी भांति वांछनीय नहीं हो सकती। निमा और कुमारका परस्पर अनुराग करना अस्वाभाविक नहीं जान पड़ता, पर कहानीका प्लाट कमजोर है। प्रायः हमारी हिन्दी कहानियोंमें कथाके अन्तमें प्रेमी या प्रेमिकाका चित्र इस प्रकार अंकित किया जाता है कि वह वास्तविक नहीं प्रतीत होता। निमाके पिताने जिस प्रकारकी उदारता दिखायी है, वह निश्चित ही अस्वाभाविक है। कोई भी बाप इतना उदार नहीं होता। इसी प्रकार श्री स्वतन्त्र चोपड़ाकी कहानी 'केवल तीन आने' भी कहानी कलाके विधायक तत्वोंसे रहित-सी है। एक मंजन बेचनेवाला किस प्रकारकी विज्ञापनबाजीका आश्रय ग्रहण करता है, यही इस कहानीका मूल तत्व है; परन्तु न तो कथामें कोई उद्देश्य ही है और न उसमें किसी तथ्यके प्रकट करनेकी क्षमता ही। हम ह्यू वाकरके इस कथनसे किसी भी भांति सहमत नहीं हैं कि जो भी मनुष्य करे वह सब कहानी ही है। वास्तविकता तो यह है कि बिना किसी प्रभावोत्पादक कथावस्तुके कोई भी कहानी उसी प्रकार शुष्क और नीरस हो जाती है, जिस प्रकार जलस्रोतकी धाराके बिना मन्दाकिनी।

हिन्दी साहित्य जगतमें न केवल पुरुष कलाकार ही अपनी प्रतिभाका परिचय दे रहे हैं अपितु महिलाएं भी दुगुने उत्साहसे साहित्य निर्माणमें अपना योग दे रही हैं। प्रशंसा की बात है कि हिन्दी कथासाहित्यको भी आलोकित करनेका श्रेय कई महिलाओंको है। नयी पीढ़ीकी महिला कहानी लेखिकाओंमें कुमारी कीर्ति चौधरी, श्रीमती निर्मल कुसुम, कुमारी सुशीला अवस्थी, कुमारी हेमलता नायडू, सुश्री लीला अवस्थी कुमारी शकुन्तला मिश्रके साथ-साथ सुश्री गायत्री सक्सेनाने भी इधर कई ऐसी सुन्दर कहानियोंका सृजन किया है कि हमें आशा हो चली है कि वे शीघ्र ही प्रथम श्रेणीकी कहानी लेखिका मानी जाने लगेंगी। अन्य भाषाकी कहानियोंमें जो कहानियां लिखी जाती हैं, उनमें कथावस्तुकी नवीनता और टेकनिककी ओर पूर्ण ध्यान दिया जाता है, परन्तु हमारे हिन्दी साहित्यके कहानीकार सड़ी-गली मान्यताओंको स्वीकार किये बैठे हैं और टेकनिककी नवीनता तो दूर रही, वे कथावस्तुमें भी नवीन कथानकोंको प्रस्तुत नहीं करते। यह हिन्दीके लिये एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। कदाचित इसीलिये अन्य भाषा-भाषियोंकी प्रतियोगितामें हमारी हिन्दी कहानियां पिछड़ जाती हैं। विषयान्तर होते हुए भी हम यहां यह कहनेका लोभ संवरण न कर सकेंगे कि पूर्व उल्लिखित कहानी लेखिकाओंमें कुमारी सुशीला अवस्थी न केवल हिन्दीमें ही लिखती हैं अपितु उर्दू तथा अंग्रेजीमें भी लिखती हैं और कदाचित इसीलिये उनकी कहानियोंमें टेकनिककी नवीनता है। यही बात तेलगू भाषा-भाषी कुमारी हेमलता नायडूके लिये भी कही जा सकती है। सुश्री गायत्री सक्सेनाकी सफलताका रहस्य भी मुझे इसी बातमें संनिहित प्रतीत होता है कि उन्हें हिन्दीके साथ-साथ संस्कृत और अंग्रेजीका भी सम्यक् अध्ययन है।

'शिथिलताका एक क्षण' एक छोटी-सी हृदयस्पर्शी कहानी

है तथा उसमें मानवोचित सुकुमारताकी अभिव्यक्ति सरल सुन्दर शब्दावली द्वारा की गयी है। प्रभाकर और शैवालिनी हमें कल्पना लोकके पात्र नहीं जान पड़ते अपितु वे मानवलोक के प्राणी प्रतीत होते हैं। कहानी घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान है और उसमें शैवालिनीका चरित्र निखरे हुए रूपमें प्रस्तुत हुआ है। कहानी कलाके विशेषज्ञ जेम्स डब्ल्यू लीन (James W. Linn) ने कहा भी है Short story is a representation, in a brief, dramatic form, of a turning point in the life of a single character) संक्षेपमें आधुनिक कहानी नाटकीय रूपमें एक पात्रके जीवनमें संक्रमण बिन्दुकी अभिव्यक्ति है। वस्तुतः यह उक्ति शिथिलताका एक क्षणके प्रति चरितार्थ भी होती है। प्रेमचन्दकी भांति कहीं-कहीं प्रस्तुत कहानीमें सुन्दर अर्थ गर्भी वाक्य भी देख पड़ते हैं, जो रह-रहकर मानसमें उद्वेलितसे हो उठते हैं ; जैसे 'मेधावी और प्रतिभावान् कभी सुखी नहीं रहते। वे उस वस्तुकी आकांक्षा करते हैं, जो उनको प्राप्त नहीं हो सकती।' परन्तु सुश्री सक्सेनाने जो ईश्वरपर विश्वास स्थापित करवाना चाहा है, वह हमें उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। हमारी दृष्टिमें आजका मानव केवल ईश्वरपर ही विश्वास रखकर सफल नहीं हो सकता। लेकिन समीक्षक या पाठककी निजी धारणाएं किसी भी कृति की सुन्दरतापर धब्बा नहीं लगा सकतीं, अतः मैं शिथिलताका एक क्षण, की प्रशंसा ही हम करेंगे और इन चार कहानियोंमें जहां कि एक अनुवाद है, दूसरी अस्वाभाविक है, तीसरी विज्ञापन-सी प्रतीत होती है ; वहां केवल सुश्री गायत्री सक्सेना की कहानी ही कहानी कहलाने योग्य है।

विगत कई अंकोंमें हमने कहानियोंकी समीक्षा करते हुए कहा है कि हमारे कथासाहित्यका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। परन्तु कभी-कभी यह भी सोचना पड़ता है कि हमारे नयी पीढ़ीके कहानीकार क्यों नहीं अपने उत्तरदायित्वको समझते। जितना अधिक ध्यान वे कहानियोंकी संख्या बढ़ानेमें देते हैं, यदि उतना अपनी कृतिमें नवीनता लानेके हेतु भी दें तो निश्चय ही हिन्दीका उपकार हो। प्रत्येक हिन्दीके नये कहानीकारसे यह प्रार्थना है कि वह अन्य भाषा-भाषियोंके साहित्यका भी अध्ययन करें तथा यह समझनेका प्रयास करे कि हिन्दीकी तुलनामें वह कितना अधिक प्रगति कर रहा है। इसके अभावमें हम उन्नति कर सकेंगे, यह आशा करना उचित नहीं है। यदि नयी पीढ़ीके कहानीकारोंने हमारे अनुरोधपर ध्यान दिया तो हमें विश्वास है कि हमारा भावी कथा साहित्य न केवल भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अपितु विदेशोंमें भी आदरकी दृष्टिसे देखा जायेगा।

—हंसापुरी, भंडारा रोड, नागपुर
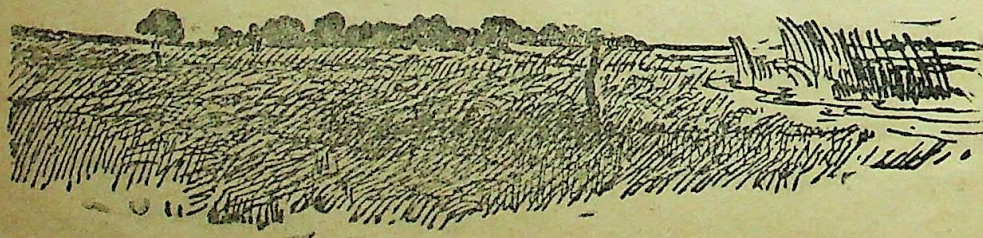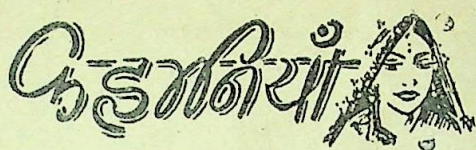
बड़े दिनका उपहार

ओ'हेनरी

जिमने आधा पेट ही खाना खाकर मेज छोड़ दी। आफिसका समय हो गया था, फिर उसे आज कुछ जल्दी पहुंचना था। बड़े साहब एकान्तमें मिलेंगे। देर कर देनेसे भीड़ हो जानेकी संभावना थी। वह रूमालसे अपने सस्ते जूतेपर लगी गर्द झाड़ता चल पड़ा। उसका मस्तिष्क अशान्त हो रहा था। गत कई दिनोंसे उसे यही चिन्ता सताती रही थी कि ठीक तीसरे दिन पड़नेवाले बड़े दिनके पुनीत तथा उल्लासमय अवसरपर पत्नी एलिसको क्या उपहार दे? बड़ा दिन साल भरका त्योहार माना जाता है। आज पांच वर्षोंसे अर्थात् जबसे उसकी शादी एलिससे हुई है, वह प्रति वर्ष उसे कुछ-न-कुछ देता रहा है और उसने जो कुछ दिया है, जब भी, महज रस्मअदाईके लिये नहीं; बल्कि ऐसी चीज जो एलिसके लिये सबसे अधिक उपयोगी हो, जो उसको सबसे अधिक प्रिय हो; परोंवाला फैल्ट हैट, शृंगार-दान, लाकेट...। इस साल भी उसे कुछ वैसा ही देना है। उसकी जेबमें मुश्किलसे दो-तीन फ्रांक (फ्रांसका एक सिक्का, लगभग बारह आनेके बराबर) बच रहे थे। उसने सोचा, साहब अगर मेहरबानी करके कुछ पेशगी दिलवा दें तो उसकी सारी परेशानी दूर हो जाये। और पेशगी कैसी? आज ही भर तो आफिस है या उसे काम करना है, इस महीनेमें। फिर तो एक सप्ताहकी छुट्टी और यह महीना और साल समाप्त। आजके बाद उसे दूसरी जनवरीको बुलाया जायेगा, जब कि वह विधिवत् वेतन लेनेका अधिकारी रहेगा। तो, आज भी उसकी मांग कुछ अनुचित नहीं।

जिस समय जिम आफिस पहुंचा, बड़ा साहब अपना पाइप सुलगा रहा था। उसने जिमकी लम्बी सलामीका उत्तर केवल जरा-सी आंखें नचाकर दिया और फिर अपने काममें लग गया। जिम अपनी कुर्सीके पास न रुक सीधा उनके निकट पहुंचा और बड़ी भद्रता और नम्रतासे बोला—'आज आपसे एक आवश्यक प्रार्थना करनी है, क्या कृपाकर दो मिनटका समय दे सकेंगे?'

साहबने उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया—'बोलो!'

'मैं इस समय एक संकटमें पड़ गया हूं। यदि आप मेरी कुछ सहायता कर सकें यानी कुछ एडवांस दिला सकें तो आभार मानूंगा।'—उसकी आंखोंमें दीनता उतर आयी थी।

'इतना ही कहना है या और कुछ?'

'जी नहीं, फिलहाल तो बस इतनी ही दरख्वास्त है। जरूरत ऐसी है कि मुंह खोलना पड़ रहा है, नहीं तो मैं आपको तकलीफ न देता। मैंने अपनी पांच महीनेकी नौकरी में कभी आजतक...'

'अच्छा-अच्छा, जाते समय मिलना!'—साहबने जिमका वाक्य पूरा होनेसे पहले ही अपना आदेश सुना दिया।

इसके साथ ही उसकी घनी मूंछोंके भीतर मुस्कराहटकी रेखा खेल गयी। वह फिर जोर-जोर कश खींचने लगा।

जिम उसके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करता लौट पड़ा। साहबके रूखे व्यवहारके बाद भी जाने क्यों उसे यह विश्वास-सा हो चला था कि उसकी प्रार्थना विफल नहीं जायेगी।

उसने अपनी जगहपर लौटकर पिछली फाइलें निकालीं और लगा कलके कामोंको पूरा करने। मगर आज उसका मन एकदम काममें नहीं लग रहा था। वह बार-बार अपनी प्लाटिनमकी निकिलवाली घड़ी देखता जाता था कि किसी तरह जल्दीसे चार बजें। उसने मन-ही-मन कल्पनाके रंगीन ताने बाने बुनने शुरू कर दिये थे—किस प्रकार वह एडवांसकी रकम, जो तीस फ्रांकसे कम न होगी, लेकर लौटेगा और फिर रास्तेमें आज ही कोई सौदा कर लेगा, कोई ऐसी नायाबचीज जिसे देखते ही चम्पकवर्णी एलिस खिल उठे।

इधर जिमके जाते ही एलिसकी उदासी रोजसे दुगुनी बढ़ गयी। अब केवल दो दिन रह गये थे। आज कई दिनोंसे वह इसी चिन्तामें घुली जा रही थी या एकदम बेचैन हो रही थी। हर साल बड़े दिनके शुभ अवसरपर वह अपने पतिको कोई-न-कोई अच्छा-सा उपहार देती आयी है। नक्काशीदार क्लिपके साथ रेशमी टाई, हाथके सुनहले बटन और अन्तमें वह घड़ी, जो जिम बराबर अपने साथ रखता है। अपने इन उपहारोंके बदले दो महीना पहलेसे उसे जलपानका खर्च आधा कर देना पड़ता था, मक्खन और अण्डेकी जगह केवल डबल-रोटीसे काम चला लेती थी और मासिक बजटमें तरह-तरहकी कतर-ब्योंतें होती थीं। किन्तु इस बार तो स्थिति ऐसी रही, तंगदस्तीने इस प्रकार आ घेरा कि जलपान आधा क्या, समूचा यों ही बन्द हो गया। कुछ कारणोंसे जिमकी पुरानी नौकरी छूट गयी। बहुत दिनों तक घरका सामान बेच-बेचकर निभाया गया। बड़ी कोशिशके बाद मित्रकी कृपासे यह नयी जगह मिली, जहां डेढ़ सौके बदले कुल पंचानबे फ्रांक मासिक मिलते हैं। तय है, इतनेसे दो प्राणियोंका दोनों जूनका केवल खाना ही चल सकता है; खेल, तमाशे, मनोरंजन सब बन्द हैं। फिर भी बड़े दिनको एकदम टाला कैसे जाये? वर्ष भरका त्योहार है। कहते हैं, इस दिनकी उदासी साल भरका मातम और इसकी खुशी साल भरकी बरकत बन जाती है। उसे अवश्य ही अपने जिमके लिये एक अच्छे-से उपहारका प्रबन्ध करना है। वह उसके प्रेमका अपमान नहीं करेगी।

चिन्ता मग्न-सी वह उठ खड़ी हुई और लगी घरकी बची चीजोंका लेखा-जोखा लेने; पर कुछ रोजकी आवश्यकताके सामानके अलावा वहां कुछ भी न था। उसने अपना पर्स निकालकर देखा —केवल पांच फ्रांक बच रहे थे। काश, वह किसी भी तरह कम से-कम पचीस फ्रांक और बचा पाती। उसने बड़े आइनेमें अपना चेहरा देखा। छब्बीस वर्षोंकी होने परं भी वह कुछ ऐसी बुरी तो नहीं लगती—प्रशस्त तथा उन्नत ललाट, बड़ी-सी प्रचुर भावभरित आसमानी आंखें, सेवसे खिले गोल-गोल उभरे गुलाबी गाल, शराबसे ज्यादा मादक फीरोजी होंठ और सबसे अधिक ये रेशमी घुंघराले बाल! यदि वह किसी बड़े रईसकी पत्नी होती, जहां उसे रातदिन चिन्ताकी आंचमें सुलगना न पड़ता और सजने-संवरनेको कीमती कपड़े और आधुनिकतम प्रसाधन मिलते तो वह सौ क्या, हजारमें एक लगती! यहां उसका सौन्दर्य धूलमें पड़ा है! लेकिन इसमें जिमका भी तो दोष नहीं। वह तो खुद फटे कपड़े पहन अपने जेबखर्चके पैसे बचाकर उसे अच्छी तरह रहने तथा अपनी पसंदकी चीजें खरीदनेको देता है। वही नहीं लेती। ले भी कैसे? क्या वैसा उचित होगा…? सोचती-सोचती वह एक लटको, जो आगे आकर गठीले उरोजोंको छूती और उसमें एक कंपन भर रही थी, सहलाने लगी। अहा, कितनी कोमल, स्निग्ध, खुशबूदार है! उसने उसे चूम लिया।… तभी एक विचार बिजलीकी तरह उसके मस्तिष्कमें कौंध गया। बस यही! प्लाटिनमकी घड़ीपर घटिया कपड़ेके फीतेकी चेन अच्छी नहीं लगती। उसके लिये तो वैसी ही चेन भी चाहिये। कितना प्रसन्न होगा प्लाटिनमकी चेन पाकर जिम! इससे बढ़कर उसके लिये दूसरा उपहार हो नहीं सकता। उसने ईश्वरको धन्यवाद दिया, जिसने उसकी

मुश्किल इतनी जल्द आसान कर दी। उसकी आंखोंमें उल्लास उतर रहा था।

चार बजते ही जिमने फाइलोंको जैसे-तैसे समेटकर दराजमें रखा और बड़े साहबके पास पहुंचा। उसका हृदय जोरोंसे धड़क रहा था। साहब अभी तक नीचे सर किये हुए कुछ लिख रहा था। जिम सतर्कतासे जाकर उसके पास खड़ा हो गया।

उसने पूछा—'क्या है ?'

'जी, आपने मुझे चार बजे बुलाया था।' जिमकी आवाज कांप रही थी।

'किस लिये…?'—साहबका स्वर अपेक्षाकृत रूखा और कठोर था।

'जी, मैंने कुछ एडवांस चाहा था और अब तो यह महीना खत्म ही है।'

'मगर अभी तो सिर्फ तेईस तारीख है।'

'मेरा मतलब है, आजके बाद तो छुट्टी ही है।'

'इससे क्या ? कानून है इकतीस तारीखसे पहले तनख्वाह नहीं मिल सकती।'

'लेकिन मैं पूरी तनख्वाह कहां मांग रहा हूं ? मेरा काम तो तीस-पैंतीस फ्रांकसे ही चल जायेगा। मुझे आशा है, आप मेरी कठिनाइयोंपर अवश्य ध्यान देंगे। मैं वायदा करता हूं, आगे कभी आपके सामने पेशगीकी मांग नहीं रखूंगा।'

'मुझे अफसोस है, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता।'

'क्या…आ…?'

'हां, कुछ नहीं, जाओ! मेरे पास फजूल बातोंके लिये वक्त नहीं है।'

जिमको यह ठोकर ऐसी लगी कि वह सहसा कुछ भी सोच न सका। वह इस प्रकार लौटा मानों उसके पैर धरतीसे चिपक गये हों। जब तक वह आफिससे बाहर नहीं निकला, रह-रहकर उसके मनमें उठ रहा था, शायद अब भी दयाकर साहब उसको पुकार लें। उसने फाटकसे निकलकर अपनी घड़ीपर नजर डाली। चार बजकर बीस मिनट हो रहे थे। उसने मुड़कर पीछेकी ओर देखा कि कहीं कोई उसे बुलाने तो नहीं आ रहा। उसके अन्य सहयोगी अब निकल रहे थे। सभीके चेहरे उदास और परीशान-से थे, मानों उनकी जिन्दगीका सरबस निचोड़ लिया गया हो। फिर भी वे बल-पूर्वक बातोंमें अपनेको बहलाने तथा अपनी रिक्तताको भूल जानेकी कोशिश कर रहे थे।

जिम मन्त्र-चालित-सा घरकी ओर चल पड़ा। इस समय न उसमें घरका आकर्षण था और न जीवनकी स्फूर्ति। उसे अपनी कल्पनाकी इमारत ढहती जान पड़ी। उसने सोचा क्या इस साल वह प्राणोंसे अधिक प्रिय एलिसको कोई उपहार न दे सकेगा ? आज उसे अपनी हीनताका अनुभव हो रहा था। उसे हँसी आयी, उसकी भी इकाई कितनी तुच्छ और नगण्य है कि जहां उसने तेईस दिन खून-पानी एककर काम किया है, वहां भी वह दस दिनोंकी मजदूरी बिना महीना पूरा हुए नहीं पा सकता। कितना विचित्र नियम है और किस पावंदीसे उसका पालन किया जाता है कि व्यक्तिकी आवश्यकताओंका उसके आगे कुछ भी मोल नहीं। उसे लगा, वर्त्तमान समाजका आर्थिक ढांचा ही सड़ा हुआ है। तब ये पर्व-त्योहार क्यों आते हैं ? यदि जीवनको इतना ही उजाड़, नीरस होना है तो फुहारकी आवश्यकता ? क्या दीपशिखा इसीलिये प्रज्ज्वलित होती है कि वह पार्श्ववर्त्ती अन्धकारको और भी सघन कर दे ? मतलब यही न कि बड़े दिनका पर्व आये, दुनियां खुशियां मनाये; सब प्रसन्न होकर एक दूसरेसे गले मिलें, आपसमें बहुमूल्य उपहारोंका विनिमय करें और वह हसरतभरी, ललचाई निगाहोंसे सबको देखा करे! वह अपनी एलिसको किससे कम चाहता है ? जैसे भी हो, वह उसके लिये एक अच्छे-से उपहारका प्रबन्ध अवश्य करेगा। साल भरका पर्व वह यों ही नहीं जाने देगा।

लेकिन वह कौन-सा, कहांसे प्रबन्ध करे ? महीनेकी तेईस तारीखको वह कर्ज भी किससे ले सकता है ? घरमें एक तो कुछ बचा नहीं और जो बच रहा है, उसे एलिस बेचने न देगी। फिर उसके पासका यह सूट तो पुराना हो चुका, कौन लेगा इसे ? रोज पहननेके काममें भी तो यह आता

है। ये गले और हाथके बटन...मगर इनका मिलेगा कितना आठ या दस फ्रांक। उतनेसे क्या होना-जाना है? हां यह ठीक है। इस घड़ीको अगर बेच दिया जाये तो पचास-पचपन फ्रांक आसानीसे निकल आयेंगे। तो क्यों न अपनी प्रिय एलिसको उपहार देनेके लिये घड़ी बेच दी जाये। लेकिन यह घड़ी भी उसको ही दी हुई एक उपहार है। इसको बेच देनेसे उसे अवश्य कष्ट पहुंचेगा और यह चक्-चक् चलती हुई उसे चौबीसो घण्टे एलिसकी भोली सूरतकी याद दिलाया करती है। लेकिन इसके अलावा दूसरी कोई सूरत भी तो नहीं। इस खुशीके अवसरपर वह चुप बैठा रहे, इतना वह हृदयहीन नहीं। घड़ीके बिक जानेसे एलिस दुःखी हुई तो उसे वह मना लेगा। कोई अपने लिये तो वह बेच नहीं रहा। बादमें कुछ रकम हाथमें आते ही इससे अच्छी एक घड़ी खरीद ली जायेगी। उसने पुनः घड़ीपर दृष्टि डाली। पांच बजनेमें अट्ठारह मिनट रह गये थे। उसने इधर-उधर देखा—उसका घर भी नजदीक आ गया था। वह सामने ही तो एक गली है, जो आगे जाकर बाईं ओर मुड़ जाती है। उसके बाद लगभग दस कदम और आगे बढ़नेपर एक पुराना-सा मकान है, सील और बदबूदार, जगह-जगह छाजन टूट जानेसे जर्जर, उसकी दो कोठरियोंको वह अपने घरके नामसे पुकारता है। वह लौट पड़ा। उसने एक घड़ीकी दूकानपर जाकर अपनी घड़ी दिखलायी।

'यह तो पुरानी मालूम होती है।'—दूकानदारने तीखी दुनियाबी नजरसे घूरकर कहा।

'ज्यादा नहीं, यही कोई साल भर हुआ है, इसे खरीदे।' जिमने सफाई पेश की।

'कितनेमें खरीदा था?'—खिलाड़ीने आंख दबाई।

'नब्बे फ्रांकमें।'—सरल हृदय जिम बिना किसी दुराव-छिपावके बोल पड़ा।

'ओफ, तब तो आपने बहुत दे दिया। आजकल तो यह आउट आफ डेट हो गयी। यहां तो रोज-रोज डिजाइनें निकला करती हैं। इसे तो कोई पचास फ्रांकमें भी नहीं पूछेगा। इसमें न रेडियम लगा है और न इसका केस ही कुछ खास खूबसूरत है।

'तो आप इसके लिये कितने तक दे सकेंगे?

'देखिये साहब, मैं एक बात कहूं। मैं इसकी कीमत पैंतीस फ्रांकसे ज्यादा नहीं लगा सकता।'

'कुल पैंतीस फ्रांक! मगर अभी तो यह बिल्कुल नयी है। मिनट-मिनटका हिसाब ठीक रखती है।'

'इसी लिये तो इतना भी कह दिया; नहीं तो इससे ज्यादा कोई नहीं लगायेगा। आप चाहें तो दो-चार दूकान और घूमकर देख सकते हैं।'

जिमने देखा, उसकी नब्बे फ्रांककी घड़ी कुल पैंतीस फ्रांकमें निकल रही है। साथ ही उसका वर्ष भरका सहवास और उससे जड़ी अनेक करुण-मधुर स्मृतियां भी छूट रही हैं। पर विवश है वह, दूसरा उपाय नहीं। उसने घड़ी दूकानदार को दे दी और बदलेके पैंतीस फ्रांक कोटकी जेबमें रखकर लौट पड़ा। एक प्रश्न तो हल हो गया, दूसरा अभी बाकी था। वह कौन-सी चीज उपहारके लिये खरीदे?...वह दोनों ओरकी दूकानोंको देखता आगे बढ़ा।...ये बेशकीमती नये फैशनके गहने...ये एक-से-एक कपड़े...ये स्नो-पाउडर-क्रीम-लवेंडर...। इनका एक सेट तो वह पिछले साल भेंट कर ही चुका है। गहने-कपड़े उसकी बिसातसे बाहर हैं। वह और आगे बढ़ा।...यह थी बालोंकी एक दूकान, यहां नकली बाल और उसके शृंगारके प्रसाधन बिक रहे थे। यह जो गुच्छा टंगा है, देखनेमें कितना खूबसूरत, नरम, रेशमी...उसकी एलिसके भी तो ऐसे ही बाल हैं। बगलमें जो जड़ाऊ ब्रश और सतरंगे इन्द्रधनुषी फीते रखे हैं, वे कितने सुन्दर हैं। एलिसके लिये ये बहुत उपयुक्त हो सकते हैं। उसे अपने अनमोल बालोंको मामूली ब्रशोंसे झाड़ना पड़ता है।

जिमने दाम पूछा। ब्रशके बीस फ्रांक और फीतेके सात यानी कुल जोड़के सत्ताइस फ्रांक! सौदा मंहगा नहीं है। खरीदकर भी आठ फ्रांक बच जायेंगे। जिमने उन्हें बंधवा लिया और लौट पड़ा। उसे घड़ीके जानेका जितना गम था, इतना सस्ता और सुन्दर उपहार पानेकी उससे कम खुशी न थी।

जब वह घर पहुंचा एलिस कुछ कम उल्लसित न थी।

आज उसने महीनों बाद चायके साथ मक्खन लिपटा टोस्ट और तले हुए अण्डे भी रखे। जिमको किञ्चित आश्चर्य हुआ, लेकिन उसने इसको अधिक महत्व न दिया। उसके अन्तरमें भयंकर द्वन्द्व चल रहा था। कहीं एलिसने घड़ीके बारेमें पूछ दिया तो…? वह परसोंके पहले अपने उपहार दिखलाना नहीं चाह रहा था। उसने नीची आंखें किये चाय पी।

मगर एलिसको जिमका यों चुप रहना बुरी तरह खटक रहा था। वह अपना उपहार दिखलानेके लिये बेसब्र, बेकरार हो रही थी। साथ ही वह देख भी लेना चाहती थी कि उसकी लाई चेन जिमकी घड़ीमें कैसी लगती है। उसने उसे जिमको दिखलाते हुए पूछा—'देखो तो, यह तुम्हें पसन्द है ? तुम्हारी घड़ीमें ठीक आयेगी न ?'—उसके स्वरमें अजीब उत्सुकता भरी थी। उसने अपने प्रिय जिमपर अपनी सबसे प्यारी चीज न्योछावर कर दी थी, इसका उसे गर्व था।

जिम नयी चमचमाती प्लाटिनमकी चेन देखकर अवाक् रह गया। उसने आंखें उठाकर एलिसके चेहरेकी ओर देखा। हैट पहने रहनेपर भी एलिसके कतरे हुए बाल साफ दिखलायी दे रहे थे। यह क्या…? उसके हाथसे चायकी प्याली छूट गयी और वह कुर्सीसे गिरते-गिरते बचा। उसे पसीना आ गया, चेतना बिखरने-सी लगी। एलिस अब तक रहस्य नहीं समझ पा रही थी। वह पूछ बैठी—'क्यों क्या हुआ ?'

'तुमने बाल कटवा क्यों लिये ?'—जिमने अटक-अटक इस प्रकार कहा मानों सैकड़ों कांटे उसके कंठमें एक साथ चुभ रहे हों। उसकी आवाज कांप रही थी, चेहरा पीला, हो रहा था।

'तो इसमें हर्ज क्या हुआ ? फिर बढ़े हो जायेंगे।'—अबोध एलिस सरलतासे बोली।

'एलिस, भोली एलिस ! तुम नहीं समझ पाओगी मेरी वेदनाकी गहराई ! लो यह देखो'— उसने कांपते हाथोंसे अपना बण्डल उसकी ओर बढ़ा दिया—'तुम्हारी घड़ी...और ये हैं बचे हुए आठ फ्रांक !"

अनुवादक—आनन्दनारायण शर्मा

—जी० डी० कालेज, बेगूसराय

———

मिलन

शिवकुमार उपाध्याय

सावनके दिन अपनी बहार पर थे। सायंकालका समय था। पानीकी रिम-झिम अभी-अभी थमी थी; परन्तु बम्बई महानगरीकी प्रमुख सड़कोंपर वर्षाका कोई खास अस्तित्व न था। वर्षा थमनेके कुछ समय पश्चात ही यहां सड़कें साफ और सूखी दिखायी देती हैं। ऐसेमें एक युवती चमकदार मोटरमें एक शानदार बंगलेके सम्मुख आ रुकी। यह बंगला बम्बईके प्रसिद्ध व्यापारी दीनानाथका था।

श्रीयुत दीनानाथने अपना बाल्यकाल गरीबीमें बिताया था; लेकिन उनके अन्तरतमकी दृढ़ लगन और उन्नतिके लिये किये गये प्रयत्नोंके कारण आज गरीबीने उनका साथ छोड़ दिया था। वे कहा करते थे कि जीवनरूपी सिक्का कठिनाइयोंके सांचेमें ही ढाला जा सकता है; जिसने कठिनाईयोंका सामना नहीं किया, वह जीवनका सच्चा आनन्द नहीं ले सकता।

अब पहलेका वातावरण न था। आज लक्ष्मी उनकी चेरी थी। वे शहरके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंमें एक थे। इतनी तबदीलियां हो गयीं, परन्तु उनके स्वभावमें अन्तर या व्यवहारमें गरूर न आया। वे मनके साफ थे। सदा प्रसन्न-चित्त रहते। दूसरोंके दुःख-सुखको स्वयंका समझते, जिससे वे गरीब-अमीर सबके हृदयमें आदर एवं श्रद्धाके पात्र थे।

कुमारी निर्मला सेठ जीकी इकलौती लड़की थी। एक ही संतान होनेसे उन्होंने उसे अत्यधिक लाड़-प्यारसे पाला था। प्यारसे वे उसे बचपनसे ही निमा कहा करते थे और जान-पहचानवाले तथा उसकी सहेलियां भी उसके इसी नामका उपयोग करती थीं।

बंगलेके सम्मुख जो मोटर रुकी थी, उसमें कुमारी निर्मला, कुछ सहेलियोंके साथ कालेजसे कवि कुमारकी कविताओंका रसास्वादन करके आ रही थी।

'अरे आओ भी, ऐसे रंगीन मौसममें चाय न पीओगी ?' निमाने सहेलियोंसे कहा।

'नेकी और पूछ-पूछ', मालिनीने जवाब दिया और सब सहेलियां मोटरसे उतर पड़ीं।

कवि कुमारका पूरा नाम प्रभात कुमार था। वह एम० ए० पास कर चुका था। पढ़नेमें तेज होते हुए भी वह घरका अत्यन्त गरीब था। कालेजमें कविता करनेमें कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। निमा उसके प्रति आकर्षित थी। कुमार भी उसे कभी-कभी गौरसे देख लिया करता, लेकिन संकोचका सहारा लेते हुए, वह सोचता 'क्या गरीबको प्यार करनेका अधिकार नहीं होता ?'

'क्यों मालिनी, जो कवि कोमल कविताओंकी रचना करता है, उसका दिल कितना कोमल होता होगा ?' निमा चायकी चुसकी लेते हुए पूछ रही थी।

'ऐसा मालूम होता है कि तेरेपर उसका कुछ असर हुआ है।' बीचमें ही शीला बोल उठी।

'देखो शीला हर वक्तकी यह दिल्लगी मुझे पसन्द नहीं।'

'नाराज क्यों होती हो, सुन्दर युवक है, चिराग लेकर ढूंढोगी, तो भी न मिलेगा और फिर तुम्हारी ही जातिका है।' मालिनीने कहा।

निमाको यह छेड़ अच्छी लग रही थी, लेकिन वह कैसे अपनी सखियोंसे कहे कि वह तो कुमारकी पुजारन बन चुकी है।

'तो तुम्हीं क्यों नहीं...'—कहते-कहते वह रुक गयी। उसके गालोंपर अरुणाई छा गयी।

'हां हां कह डालो, रुक क्यों गयी ? तुम्हें लाज लगती हो तो मैं तुम्हारे पिता जीसे कह दूंगी कि निमा और कुमारका मिलन करा दो।' एक अन्य सहेलीने कटाक्ष किया।

'अरे चुप-चुप पिता जी आ रहे हैं।'

सेठ दीनानाथ उस कमरेसे दूसरेमें जाते हुए सारी बातें सुन गये।

कुछ क्षण तक सन्नाटा रहा। आखिर विमलाने शान्ति भंग की।

'क्यों निमा कहां हो ?'

'जहां मुझे होना चाहिये।' निमाके मुंहसे निकल गया और कमरा हँसीसे गूंज उठा।

× × ×

कुमारने एम० ए० प्रथम श्रेणीमें किया था। लेकिन आगे क्या करे उसकी समझमें नहीं आ रहा था। उसने समय-समयपर विद्याध्यनके हेतु महाजन छेदीलालसे कर्ज भी लिया था और महाजनने उसे इसी विश्वासपर दिया था कि युवक होनहार दिखता है, पढ़ाईके पश्चात पैसा पैसा मय ब्याजके वसूल हो जायेगा।

पहले कुमार सोचा करता था कि कविता करनेका सौभाग्य भाग्यवानोंको ही प्राप्त होता है। परन्तु अब उसने अनुभव किया कि उसके द्वारा रची गयी कविताओंसे उसका जीवन-निर्वाह नहीं होनेवाला। उसकी कविताओंका रसपान लोग करते थे, पर एवजमें वाह-वाह तथा प्रशंसात्मक शब्दोंके अतिरिक्त कुछ न मिलता था। कभी-कभी परिस्थितियोंसे ऊब आ जाता था। कुछ दिनोंसे

महाजन भी तगादा करने लगा था। कुमारने नौकरी करनेका निश्चय किया।

उसने कई दफ्तरोंके दरवाजे खटखटाये, परन्तु असफल रहा। कवि और नौकरी, कहकर कोई-कोई तो उसके साथ हँसी करता। वह अपनी दरिद्रताका दर्शन करता तो किसीके हृदयमें दया भाव जाग्रत हो जाता और वह कह देता, 'स्थान होने दो, प्रथम अवसर तुम्हें ही दूंगा।'

कुमारने यह भी अनुभव किया कि आजकल नौकरी भी उन्हीं भाग्यवानोंको प्राप्त होती है, जिनकी सिफारिश बड़े व्यक्ति करते हैं। दुर्भाग्यसे उसका ऐसा कोई नहीं था। उसने यह भी देखा कि नौकरी प्राप्त करनेमें, योग्यताको मद्देनजर रखते हुए, घूस और खुशामद जरूरी होती है, जिसका कि उसके पास सर्वथा अभाव था।

× × ×

सेठ दीनानाथ, निमाकी खुशीको अपनी खुशी समझते थे। जब किशोरावस्थामें उसकी मां इस लोकसे विदा हो गयी तो दीनानाथने फिर दूसरा विवाह न किया। मित्रों और रिश्तेदारोंने समझाया कि आप अपने लिये नहीं तो अपनी अपार सम्पत्ति सम्भालनेके लिये ही विवाह कर लीजिये ; पर दीनानाथ उन्हें समझा देते कि निमा ही उनके लिये सब कुछ है।

जब उन्होंने निमा और कुमारके मिलनकी बात अपनी पुत्रीकी सहेलीके मुखसे सुना तो पहले उन्होंने इसकी जांच-पड़ताल की और इस निष्कर्षपर पहुंचे कि निमा अवश्य ही कुमारको चाहती है। उन्होंने कुमारसे मिलनेका निश्चय किया। वैसे तो कुमार निमाको पढ़ाने आता था ही, अतः वे उसे जानते थे और समय-समयपर उसको हिदायतें भी देते रहते थे। अन्तमें वे कुछ सोचकर कुमारके घरकी ओर चल दिये। वहां पहुंचकर देखा कि वह दरवाजा बन्द कर कहीं जानेकी तैयारीमें है।

'नमस्ते, आइये!' कहकर कुमारने फिरसे दरवाजा खोल दिया।

'नमस्ते बेटा!' कहते हुए सेठजी घरके भीतर गये।

सेठ जीने कमरेके भीतर एक नजर दौड़ायी। सब वस्तुएं अस्त-व्यस्त थीं। कुमारके मुखपर मलीनताका साम्राज्य था और मन उलझनोंसे भरा था। लड़कीका भावी जीवन-साथी इस हालतमें, उनके मनमें प्रश्न उठा। परन्तु उसी क्षण उनके विचार बदल गये और उन्होंने सोचा कि वे स्वयं भी तो एक समय इससे भी खराब हालतमें थे।

'बेटा, तुम्हारे मुखपर यह परेशानी क्यों झलक रही है? मैंने तुमसे अनेक बार कहा कि हमेशा हँसी-खुसीके साथ जीवन व्यतीत करो। हँसने और प्रसन्न रहनेसे तो आयु भी बढ़ती है। लेकिन तुम तो हमेशा ही गमगीन दिखायी देते हो।

'आप ठीक कहते हैं। लेकिन दुख तो मेरा जन्म-भाई है—चोली और दामनका साथ है। हो सकता है कि हँसी-मुस्कराहट और प्रसन्नताको अपनानेमें मेरा जन्म-भाई बुरा मान जाये।'

'बस करो बेटा, मैं समझ गया।' बीचमें ही सेठ जीने कहा।

कुमारको ध्यान आया, वह क्या-क्या कह गया उनसे। उसने अपनी गलती महसूस की।

'लेकिन आपका आगमन कैसे हुआ?'

'तुमसे एक महत्वपूर्ण राय लेनी है।'

'तो मुझे ही बुला लिया होता। आपने वृथा क्यों कष्ट किया?'

'नहीं हमारा ही आना उचित था और यह कार्य है भी ऐसा ही।'

'मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा।'

'तुम्हें परेशानियोंसे मुक्त करने आया हूं। मेरे कोई पुत्र नहीं है, अतः तुम मेरे ही घर रहो! मैं निमाको तुम्हें सौंप देना चाहता हूं।'

'यह आप क्या कह रहे हैं?'

'ठीक ही कह रहा हूं।'

'लेकिन आप कुछ सोचिये तो सही, कहां मैं और कहां...'

'मैं विचार करके ही इस निश्चयपर पहुंचा हूं।'

'निमाकी इच्छा भी जानना आवश्यक है।'

'वह इससे बाहर नहीं है।'

'फिर भी मैं उससे बात करना चाहूंगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा, परन्तु यदि निमाने हां कह दिया, तो फिर बात पक्की रही?'

'जी हां!'

× × ×

'अब तुम्हें कालेज जानेकी कोई आवश्यकता नहीं!' सेठ जी निमासे कह रहे थे।

'क्यों पिता जी?'

'अब तुमको पढ़ानेवाला घरपर ही रहने लगेगा।'

'यह तो और भी अच्छा हुआ। घरपर उनसे पढ़ लूंगी और कालेज भी हो आया करूंगी। परीक्षा-फलमें सबसे ऊपर नाम रहेगा मेरा।'

'किन्तु घरपर कुमारकी रोटियां कौन सेंकेगा?' सेठ जीने मुस्कराते हुए पूछा।

'तो...?'

'नहीं, समझी?'

'जी!'

'बहुत समझदार है, मेरी बेटी! कुमार इसी सिलसिलेमें तुमसे मिलना चाहता है।'

'सेठ जी बाहर चले गये और निमा बैठी रही—मन्त्र-मुग्ध-सी।

× × ×

महाजनको मूलसे व्याज प्यारा होता है। कुमारने असल रुपये देना तो दूर रहा, अभी तक छेदीलालको व्याजकी भी एक पाई तक न दी थी। आखिर वह कब तक सब्र करता। एक दिन कुमारके घर आकर उससे झड़प कर बैठा।

'निठल्लेके समान इधरसे उधर घूमा करते हो और कविताएं लिखा करते हो। मेरे रुपयोंके चुकता करनेकी भी कोई बात सोची है?'

कुमारने महाजनकी वाणीमें कटुताका आभास पाया फिर भी उसने नम्रतापूर्वक कहा, 'छेदीलाल जी, समय आनेपर आपका पाई-पाई चुका दिया जायेगा। मैं यह मानता हूं कि आपने रुपये देकर बहुत बड़ा अहसान किया है, किन्तु इसके एवजमें आपको व्याज भी तो मिलेगा।'

महाजनको बुरा लग गया। सोचा कलका छोकड़ा मुझे समझाता है! स्वरको कुछ तेज करके वह बोला, 'नंगे नबाब, किलेपर मकान। देते तो कुछ बनता नहीं, उल्टा मुझे ही समझाता है। अभी तक दूसरे रास्तेका सहारा लिया होता तो आटे-दालका भाव मालूम पड़ जाता।'

बहुत कम युवक ऐसे शब्दोंको सहन करनेमें समर्थ होते हैं। कुमारको भी ताव आ गया।

'गरीबीका मजाक न उड़ाओ छेदीलाला जी! मैं यह मानता हूं कि दुनियामें गरीबी सबसे बुरी होती है। अभी गरीब लोग अमीरोंके जुल्म सहन कर रहे हैं, परन्तु जब ये जुल्म गरीबोंकी सहन-शक्तिके बाहर हो जायेंगे तो उनका हृदय भी विद्रोह कर बैठेगा।'

'तो तुम भी आगसे खेलनेका प्रयास मत करो! एक-आध चिनगारी लग जायेगी तो पानी मिलना मुश्किल हो जायेगा।' महाजन भी भड़क उठा।

'अरे जा-जा, काला मुंह कर यहांसे। पैसे ही लेगा, कोई जान थोड़े ही लेगा।'

झगड़ा सुनकर आसपासके लोग एकत्रित हो गये और दोनोंको समझाया, परन्तु जाते समय छेदीलाल सबके सामने चेतावनी दे गया कि चार दिनके भीतर सब पैसा अदा न किया तो वह आदालतका सहारा लेनेके लिये मजबूर होगा।

महाजनके झगड़ेकी खबर सेठ दीनानाथको भी मालूम हुई। उन्होंने महाजनका सब पैसा चुका दिया और कुमारको मालूम सी न होने दिया।

× × ×

प्रातःकालका समय था। कुमार अपने कमरेमें आराम कुर्सीपर बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसने देखा निमा चली आ रही है। कलीने फूलका रूप ले लिया था और फूलको मालीका इंतजार था। कुमारके मनमें विचार आया, 'काश मैं ही इस फूलको अपना सकूं।'

'क्या नाराज हो, निमा ?' उसने मुसकराते हुए प्रश्न किया।

'परमेश्वरसे नाराज रहनेमें तो दुःख ही प्राप्त होता है।'

'वाह ! अच्छा बताओ क्या कह रहे थे, तुम्हारे पिता जी ?'

'वे कह रहे थे कि आप मुझसे मिलना चाहते हैं।'

'हां, उनसे मैंने कहा तो था।'

'मैंने सोचा आपको आनेमें कष्ट होगा, इसलिये मैं ही आ गयी।'

'अच्छा ही किया तुमने।'

'क्यों, कैसे याद किया था ?'

प्रश्न इतने मधुर ढंगसे किया गया था कि कुमार देखता ही रह गया। आज निमा उसकी आखोंमें और दिनोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर जंच रही थी।

'तुम्हारे पिता जी हम दोनोंको विवाहके पवित्र बंधनमें बांधना चाहते हैं। मेरी परिस्थितिसे तुम पूर्णतः परिचित हो। क्या तुम इस बंधनसे सुखी रह सकोगी ?'

निमा कुर्सीपर बेठने ही वाली थी कि उसके सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हो गया। वह खड़ी-की-खड़ी रह गयी। गालोंने रंग बदला, पलकें नीचे झुक गयीं। वह क्या जवाब दे, इस बातका कुछ निश्चय न कर सकी।

कुमार इतनी देरी सहन न कर सका। कुर्सीसे उठा और निमाको झंझोरते हुए बोला,'जवाब क्यों नहीं देती, निमा ?'

निमा और अधिक निकट आ गयी। उसने कुछ जवाब न देते हुए अपने सिरको कुमारके पैरोंपर रखा दिया।

—भालीपुरा, खण्डवा (म० प्र०)

केवल तीन आने

स्वतन्त्र चोपड़ा

बचपनसे मैं 'काना राजा' हूं। किन्तु युवावस्था पर्यन्त मुझे इस दायें अधखुले नेत्रके अभावका कभी दुःख नहीं हुआ। उदासीनता तो मुझसे कोसों दूर भागती थी। मां जब प्यारसे मुझे 'नयन सुख'के नामसे पुकारती तो प्रसन्नताके मारे मेरा दायां अध-खुला नेत्र भी फड़कने लगता था और मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि अभी खुल पड़ेगा।

परन्तु, युवावस्थामें पदार्पण करते ही मुझे अपने दायें नेत्रका अभाव बुरी तरह खटकने लगा। बात वास्तवमें यह थी कि मेरे सभी मित्रोंका विवाह या तो हो चुका था या निकट भविष्यमें होनेवाला था, किन्तु मैं 'काना राजा' होनेके कारण सर्वत्र ठुकराया-जा रहा था। विवाहकी बात तो दूर रही, मुझसे कोई बात तक करनेको भी इच्छुक न थी।

अन्तमें 'नरगिस' नामक एक सुन्दरी मेरे सम्पर्कमें आयी। वह मेरे प्रेमजालमें शीघ्र ही फँस गयी। परन्तु वह भी मेरी तरह इस विशाल अद्भुत जगतमें केवल बायें नेत्रसे ही देख सकती थी ; क्योंकि उसका दायां नेत्र बिलकुल सफेद था। जिस प्रकार—'मायाको माया मिले कर कर लम्बे हाथ' उसी प्रकार—मुझ कानेको कानी मिली कर-कर लम्बे हाथ।

आप हँसते क्यों हैं ? इसमें हँसनेकी तो कोई बात नहीं। ऐसी सुन्दर जोड़ी तो किसी भाग्यशालीकी ही होती है। खैर, छोड़िये इन बातोंको। चाहे नरगिस कानी थी, फिर भी हमारा प्यार दिन-बदिन पनपने लगा ; क्योंकि हम-जिनसका हम-जिनससे प्यार होना स्वाभाविक है।

एक दिन मैं बहुत प्रसन्न था और नरगिसके साथ इधर-उधरकी गप्पें हांक रहा था। वह भी मेरी ओर देखते हुए बड़ी प्रसन्न मुद्रामें बातें कर रही थी। सहसा वह चौंक पड़ी और माथा सिकोड़ते हुए बोली, 'तुम्हारे दाँत बहुत खराब हैं।'

मैं दांत पीसकर रह गया। वास्तवमें मेरे दाँत बहुत ही खराब थे। मेरे दाँतोंके पीलेपनने हमारे प्रेम-तरुपर बिजली गिरा दी। मैं मुंह लटकाये घर चला आया और कई प्रकारके सोच-विचारोंमें लीन हो गया।

बात वास्तवमें यह है कि या तो आप प्रेम कर सकते हैं या सोच-विचार सकते हैं। मैं सारा दिन सोचता रहा और दिन बीत गया—परन्तु परिणाम सिफर। परिणामको तो सिफर होना ही था। प्रेमको परिणामका क्या प्रयोजन?

अन्तमें मैंने यह निश्चय किया कि मुझे आत्महत्या कर लेनी चाहिये। निश्चय कर लेनेके उपरान्त मैं एक नदीकी ओर चल पड़ा।

सर्वप्रथम परमात्माको और तत्पश्चात नरगिसको याद कर मैं नदीमें कूद पड़ा।

न जाने कब चेतना आयी। देखता क्या हूं कि एक संत बाबा मेरे पास बैठे हैं। मुझे होशमें आया देखकर उन्होंने बड़े प्यारसे मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटा, तुने आत्महत्या करनेकी क्यों ठानी?'

'सन्त बाबा जी, आपसे क्या निवेदन करूं?...' आगे मैं कुछ न कह सका।

'बेटा, मैं समझ गया कि तेरा प्यार भरा दिल टूट गया है। तेरी प्रेमिकाने तुझे ठुकरा दिया है ...'

'बाबा जी, मैं नरगिससे बहुत प्यार करता हूं...'

'हां बेटा, मैं सब कुछ जानता हूं। अब तुम चाहते क्या हो?'

'बाबा जी, मैं केवल यही चाहता हूं कि मेरे दाँत मोतियोंकी तरह चमकने लगें', मैंने बड़ी शीघ्रतासे उत्तर दिया।

'एवमस्तु' कहकर सन्त बाबाने मुझे एक कागजपर कुछ लिखकर दिया। मैं उस कागजको लेकर घर चला आया।

घर पहुंचनेपर मैंने जो कुछ उस कागजमें लिखा था, उसपर आचरण किया और बीस दिनके उपरान्त एक बार फिर 'नरगिस'के घर गया। मुझे देखते ही उसने मुंह बना लिया, जिसे देखकर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह अचरजसे मेरी ओर देखती रही, क्योंकि अब मेरे दाँत अनारके दानोंकी भांति साफ थे।

हमारा विवाह हो गया। मैंने पूरी घटना नरगिसको सुना दी। अपार प्रसन्नताके कारण उसने अपनी आंखोंमें प्रेमके आंसू भरकर कहा, 'प्राणनाथ! यह बात छुपानेकी नहीं है। आपको इससे सर्वसाधारणकी सेवा करनी चाहिये! दाँतोंकी खराबी न जाने कितने प्रेमी जनोंके दिल तोड़ती होगी।'

इसलिये भाइयो! मैंने एक मंजन तैयार किया और उसका नाम रखा 'मंजन प्यार बढ़ाव'। लाभ लेना हराम है। अब तक लाखों भाइयोंकी सेवा कर चुका हूं। जब तक जीवित रहूंगा, सेवा करता रहूंगा। दस दिनके लिये बड़े पैकटका मूल्य केवल पांच आने, दो पैसे रोजका खर्च कुछ अधिक नहीं है। दाँत मोतियोंकी तरह चमकने लगेंगे।

लोग एक-एक करके खिसकने लगे। उसने अपना भाषण और तेज कर दिया। लाभ लेना हराम है, लागतपर बेचता हूं। मेरे पास छोटे पैकट भी हैं, मूल्य केवल तीन आने! तीन आने...तीन आने...।

सब लोग चले गये। वह निराशा भरी दृष्टिसे जाते हुए लोगोंकी ओर देखते-देखते पैकटोंको फटी हुई कोटकी जेबोंमें रखकर सोचने लगा—'सप्ताह भरसे यही हो रहा है। आखिर अब कोई शिकार फंसता क्यों नहीं? क्या सब लोग मेरी तरह निर्धन हो गये हैं या उन्हें मेरी बातोंपर विश्वास नहीं होता। क्या करूं? मैं क्या सचमुच किसी नदीमें कूद पड़ूं?'

—२९२।३ औट्रम लाइन, किंगज वे-दिल्ली

शिथिलताका एक क्षण

गायत्री सक्सेना

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं, जो सदाके लिये अपनी दुःखभरी याद छोड़ जाते हैं। गहरा आघात जीवन भरकी संचित श्रद्धा, विश्वास व ईश्वर भक्तिको कभी-कभी सदाके लिये नष्ट कर देता है। कुछ क्षणके लिये उसे ईश्वर शब्द तकसे घृणा हो जाती है।

प्रभाकरकी यही मनोदशा थी। वह ईश्वरको कृपालु, रक्षक व न्यायी ही अब तक मानता चला आया था। परन्तु आज उसका अटल विश्वास चूर हो चुका था। उसे लग रहा था कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है और यदि है तो संसारसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह निरपेक्ष एवं उदासीन है। प्रार्थना धर्म-कर्म सब व्यर्थ है। उसने किसका दिल दुःखाया; यह उसे स्वप्नमें भी याद न आया और कौन-सी चूक हुई; यह उसे ध्यान न था। कितनी प्रार्थनाएं कीं, पर वह निष्ठुर उसकी पत्नीको जीवित न छोड़ सका।

मूक रुदन व दीर्घ निश्वास युक्त उसने सदाके लिये सोई शैवालिनीकी ओर देखा और धीरे-धीरे उस स्थानपर पहुंच गया, जहां अतीतकी मधुर स्मृतियोंमें वर्तमानके विषाद और भविष्यकी कालिमाको स्थान न था।

'मेधावी और प्रतिभावान कभी सुखी नहीं रहते। वे उस वस्तुकी आकांक्षा करते हैं, जो उनको प्राप्त नहीं हो सकती। जब वे देखते हैं कि अनुचित पथका अनुसरण किया जा रहा है, वे प्रयत्न करते हैं कि ठीक मार्गका निर्देश कर दें; परन्तु सफल नहीं होते, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपनी ही रीति और अपनी ही बुद्धिसे चलना चाहता है। वे ग्रन्थपर ग्रन्थ लिखते हैं, उपदेशपर उपदेश देते हैं, पर संसारको तिल भर कभी बदल नहीं पाते।'

प्रभाकरको मानो किसीने झकझोर दिया। विचारधारा आगे बढ़ी। 'बुद्धि, आत्मविश्वास, आत्मतृप्तिके तुम्हारे सिद्धान्त मेरी समझमें नहीं आते। भगवान सुन्दर-से-सुन्दर वस्तु बनता है और नष्टकर देता है, क्या उसे इस प्रकारकी क्रियामें आनन्द आता है? वह कष्ट देता ही क्यों है? न मालूम कितने संसारमें ऐसे हैं, जो अपना अपराध तक नहीं जानते फिर भी उनको दुःख भोगना पड़ता है। जब तक मनुष्य कुछ अनुभव प्राप्त करे, मृत्यु अपनी गोदमें उसे छिपा लेती है। मनुष्य पैदा होता है, उसे नहीं मालूम वह क्यों भेजा गया? वह चिन्तन करता है, उलझता है, आगे बढ़नेसे डरता है, ठोकर खाता है, दुःखी होता है, परन्तु उसे पता तक नहीं चलता कि उसका रास्ता था कौन-सा? जब उसे अपना अपराध ही मालूम नहीं, तब जो दंड उसे मिला, उस दंडका प्रयोजन भी क्या?...'

'तुम झूठ बोलते हो। कहां है ईश्वर? किसकी प्रार्थना तुम किया करते हो, वह जो पत्थर है और जिसने कभी प्रेमकी टीसको अनुभव नहीं किया? वह हमपर क्या दया करेगा? वह हमको रोते देखकर हँसता है। वह हमसे क्या सहानुभूति रखेगा? तुम कहते हो प्रेम करना ही पाप है। परन्तु वह मनुष्यको संसारमें भेजकर प्रेमका अनुभव करवाता ही क्यों है? प्रकृति ईश्वरकी सर्वोत्तम सौन्दर्यमयी कृति है। उसमें भी देखो, पशु-पक्षी परस्पर 'प्रेम' करते हैं? उनको क्यों नहीं कोई बुरा-भला कहता? और ईश्वर या तुम्हारे ठाकुर जी हमसे अधिक उनकी देख भाल करते हैं। भगवानने नारीकी सृष्टि ही क्यों की? क्यों मनीषियोंने कहा कि पुरुषकी हर उन्नतिमें नारीका हाथ है, दृष्ट हो या अदृष्ट? पशु-पक्षी अपनी-अपनी सहचरीके साथ आनन्द करते हैं, किन्तु हम? प्रेमका प्रारम्भ होते न होते वस्तु छिन जाती है। क्या यही भगवानका न्याय है? क्या यही उसकी दयालुता है कि वह हमारे क्षणिक आनन्दको भी नहीं देख सकता?...'

प्रभाकरकी आँखें छलछला आयीं। उसने सोचा, 'धर्म क्यों नहीं किसीके व्यक्तिगत संशयोंका समाधान कर पाता? क्यों नहीं वह किसीको सुधारका अवसर देता, क्यों वह उसको इतना निराशावादी बना देता है कि धर्मके प्रति उसकी आस्था ही मिट जाये। फिर सदाचारी मनुष्य क्यों सदा दुःख भोगते हैं?

अद्वितीय सुन्दरी छलनाकी चकाचौंध करनेवाली मूर्त्ति सम्मुख हँसकर कह रही थी।

'प्रभाकर! ईश्वर तो भोले मनुष्योंको छलनेका बहाना मात्र है। तुम जानते हो मैं कभी सदाचारिणी न थी और होनेका प्रयत्न भी नहीं किया। अच्छाइयां तो मुझसे दूर ही रहना चाहती हैं; फिर भी मैं सुखी हूं। तुमने कभी किसीके दिलको नहीं दुःखाया, परन्तु तुम्हें क्या मिला? अभाग्य ही और मुझे मिला सौभाग्य।

देखो यह पेड़ हैं, फूल खिले हैं तथा चिड़ियां कलरव कर रही हैं। सब कितने मस्त हैं। इनको कौन सद्-असद्का ज्ञान कराता है? इन्होंने अपने सुखके सिद्धान्त स्वयं बनाये हैं। हर वस्तुका नाश है, पर हरएकके आनन्दके क्षण भी हैं। मैं भी यौवनमें भरपूर सुख चाहती हूं, मिले चाहे जिस साधन से। मैं चाहती हूं सब मेरे सौन्दर्यको देखें और प्रभावित हों। यह समय बहुत संक्षिप्त होगा, पर फिर भी बहुत महान्। क्षणिक आनन्द भी महान् है। विवेकसे तो मुझे घृणा है, क्योंकि विवेकशील मनुष्य नीरस होते हैं।'

छलनाकी उपेक्षामयी हँसी गूंज उठी। अंगड़ाई लेते हुए उसने फिर कहा—'मैं चाहती हूं धन, जीवनका आनन्द, ऐश और प्रशंसा।'

क्षण भरके लिये विचारधारा रुक गयी। प्रभाकरने गीली आंखें पोंछ लीं और फिर सोचना शुरू किया, 'धनी पतिकी प्राप्ति स्त्री-जीवनकी सबसे बड़ी अभिलाषा होती है, पर शैवालिनीको क्या मिला? उसे भी सुन्दर वस्त्र पहिननेकी और पति द्वारा अपने सौन्दर्यकी प्रशंसा सुननेकी अभिलाषा रही होगी, पर मैं कदाचित् इधरसे उदासीन था। मुझे ध्यान ही नहीं आया कि विवाहके दो-चार वर्षके बाद पत्नीको अपने जीवनमें नीरसता इसलिये मालूम पड़ने लगती है कि पति पहलेकी तरह उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा करना भूल जाता है। ओह, तरसती रह गयी शैवालिनी!'

छलनाको देख प्रभाकरको गहरा आघात लगा और उसने सोचा, 'भगवान अद्वितीय सुन्दरीको दुष्टा क्यों बनाता है? क्या सत्यमें सौन्दर्य विष है, जो अज्ञातरूपसे मानसिक प्रवृत्तियोंको जगाता रहता है?'

छलना फिर सम्मुख आ गयी।

'जानते हो प्रभाकर! सौन्दर्यकी सफलता कब है? जब कोई उसकी प्रशंसा करे और उसका अनुभव करे! प्रकृतिमें देखो, भगवानके तत्व उपदेश व सन्देश अभिव्यक्त हैं। यदि प्रकृतिकी कृतियोंको कोई व्यभिचार नहीं बताता तो मनुष्य भी कुछ पाप नहीं करता। मैं वेश्या हूं, तुम मुझसे घृणा कर सकते हो। पर सोचो, क्या मैं गलत कहती हूं। तुम्हारे भगवानने क्यों नहीं मुझे वेश्या होनेसे बचा लिया? मैं जन्मसे तो नहीं थी।'

'पाप और पुण्य तुम्हारी कल्पनाकी वस्तु हैं। मनुष्य अपने जीवनको सुखी बनानेके लिये जो कुछ भी करता है, सब ठीक है। यह सभ्यताका कृत्रिम आवरण है, जो सदाचारी और दुराचारीका भेद करता है। भगवान प्रत्येकको आनन्दके क्षण देता है और भोगका अवसर भी। मैंने भी कुछ पाप नहीं किया। मान भी लो कि यह पाप है तो क्या यह भगवानकी प्रेरणा नहीं है? मैं इस बातको माननेके लिये तैयार ही नहीं कि अच्छे काम वह करवाता है और बुरे काम स्वयं मनुष्य करता है। सब उसीकी इच्छासे होता है, बिना उसकी मर्जीके पत्ता भी नहीं हिलता।'

'तुम भगवानके गुणोंमें, प्रेमकी दिव्यतम अनुभूतिपर विश्वास करते हो, पर मैं नहीं करती। आजकलके जीवनमें, भावुकताका कोई स्थान नहीं। कितने ही पुरुष पत्नीके जीवित रहते समय कह देते हैं, तुम मेरी प्राणेश्वरी हो तुम्हारे बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकता। पर होता क्या है? पत्नीकी मृत्युपर सभी दूसरा विवाह कर लेते हैं।

यह ... पुनर्विवाह धार्मिक आचारका एक

अंग था। अब यह शरीरकी प्यासको नियमित रूपसे बुझानेका एक ढंग है। स्त्रीका अच्छा या बुरा होना, पवित्र या पतिता होना, आजकल कुछ अर्थ नहीं रखता। सुन्दरता समस्त दोषोंका आवरण है। कितनी ही पवित्र और शीलवती विवाहका एक प्रस्ताव तक नहीं प्राप्त करतीं, क्योंकि वे सुन्दर नहीं हैं और सुन्दरी दुराचारिणी होनेपर भी असंख्य प्रस्ताव पाती हैं। फिर भगवानका क्या न्याय रहा ?'

प्रभाकरने शैवालिनीकी ओर देखा। उसे चिर निद्रामें सोये चार घण्टे बीत चुके थे। शायद प्राण लौट आयें, इसकी आशा भी अब समाप्त हो चुकी थी। 'आज जीवन कितना क्षणिक है', उसने पत्नीकी ओर देख सोचा, 'संक्षिप्त जीवनमें वह अभिव्यक्त भी न कर पाया कि उसके प्रति उसे कितना प्यार था। वह प्यारका पूर्ण अनुभव किये बिना ही चली गयी। पांच वर्षका कुमार है, वही सुखी है। जहां उसको समझ आयी, मेरी तरह उसके सम्मुख भी संघर्ष और निराशा आविर्भूत हो जायेगी। बाल्यावस्थाको पार करते ही निराशा और असफलताके अतिरिक्त मनुष्यको मिलता ही क्या है ? भगवानके प्रति विश्वास डगमगाता है। हर स्थानपर मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक पतनका यही कारण है। क्यों न कुमार अभी इसी अवस्थामें मांके साथ सदाके लिये सो जाये।'

'कितना भयंकर विचार है। क्यों मेरे मनमें यह घृणित विचार आया ?' प्रभाकर उठकर कमरेमें टहलने लगा।

'भगवान सुन्दरसे सुन्दर वस्तुका निर्माण करता है। अपने सम्मुख ही अपनी वस्तुको नष्ट होते देखकर क्या उसे दुःख नहीं होता ?' शैवालिनीकी ध्वनि फिर गूंज उठी। 'मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं। काश, तुमको ऐसी पत्नी मिली होती, जो तुम्हारी तरह सरल जीवन व सरल विचारपर चलती। पर तुम मेरे सर्वस्व हो, आराध्य हो और तुमको छोड़कर मैं स्वर्ग जाना भी पसन्द नहीं करती। वहां तुम्हारे बिना मुझे सूना-सा लगेगा।'

प्रभाकरने सजग हो सोचा, 'वह अकेले ही चली गयी। अब वह सदा अकेली ही रहेगी। क्या वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी ? क्या वह अन्धकारसे घबड़ाकर मुझे ढूंढ रही होगी ? क्यों न मैं भी उसीके पास सो जाऊं ?'

बराबरवाले कमरेमें हलकी पदचाप हुई। प्रभाकर बाहर आया। कुमार खड़ा आंख मल रहा था।

'पापा, ममी कह रही थीं, आप मुझे बुला रहे हैं।'

'आयी थीं क्या ?'

'हां, अभी अभी तो, सफेद साड़ी पहने थीं। गलेमें बेलेके फूलोंकी माला थी। उन्होंने मुझे प्यार किया और कहा, 'जा मुन्ने, पापा तुझे बुला रहे हैं।'

प्रभाकरने कुमारको गोदमें लेकर जोरसे हृदयसे चिपटा लिया।

'हां बेटा, मैं तुझे भूल गया था। सचमें मुझे तेरी जरूरत थी।'

'कौन कहता है, शैवालिनी चली गयी। अभी उसे मेरी चिन्ता है।' प्रभाकर मनमें कह उठा।

पासके मन्दिरमें आरती हो रही थी, जहांसे ध्वनि आयी—

'भक्त जननके संकट छिनमें दूर करे।
ओम् जय जगदीश हरे।...'

उसने सोचा, 'शैवालिनी स्वर्ग जाकर भी तो नहीं भूली'।

ईश्वरपर डगमगाता विश्वास फिर स्थिर हो गया।

—८६ प्रेमनगर, दयालबाग-आगरा

रोती हो

अंचल

रोती हो!
आओ तो नजदीक
हाँ रोती हो!
आदिम निशिथ-सी
स्वप्न लोकसे जैसे आज बिछुड़कर
जगकी पीड़ा ज्वालासे गीली हो
रोती हो!

देख रही हो नीले-नीले कृष कंकाल
सुना है नारीके चीत्कार
और भूखे शिशुओंका क्रन्दन हाहाकार
आज क्या कर्तासे कर द्रोह
रोती हो?

दीख रही मायूसी चारों ओर
न जिसका छोर
मरघट-सी आवाज सुनाई देती
जैसे गिरती गाज
रोती हो!

यहाँ सड़कोंपर सोये श्वान
बगलमें पड़ा मुर्दा इन्सान
बीनते बहती नालीके ग्रास

रोती हो!
हवा रोती रोते तूफान
तुम भी रोती हो!

फटे दामनमें छाती खोल
लिये अपना दरिद्र यौवन
नग्न निर्लज्जा नारी आज
बनी शव-सी नीरव निष्प्राण
त्रस्त दलित पाषाण
रोती हो!

दूर पीले खेतोंके पार
खड़े हैं नीले काले ताल
झोपड़ोंके निष्प्रभ कंकाल
जीष नर-नारी गैया बैल
जिन्दगीके भूखे
सांझ खत्म होते-होते
कुछ चंचल कुछ खामोश
सो जाते ले दोजखकी आग
अंतड़ियोंमें अनगिनती उल्कापात
अरे रोती ही हो!

इन्हें तो रोना भी अपराध

सिसकियां भरना एक गुनाह
इन्हें क्या जीनेका अधिकार
भेड़ियेसे खूंखार
यहीं हो जाते
खुलते इन्किलाबके द्वार
इन्हें रोने भी दो
पर तुम रोती हो !

—'शिवकुटी' नेपियर टाउन, जबलपुर

एक गीत

जानकी प्रसाद 'शरद'

जब पर्वतकी किसी गोदसे गूंज उठेगा गीत सुहाना
तो समझूंगी देव, मुझे ही आये हो तुम गीत सुनाने,

उतर रश्मियां नील गगनसे
धरतीके संग खुल खेलेंगी,
सारा दुख, सुख बन जायेगा
उसके आंसू खुद पीलेंगी,

जब नीरजकी उलझी पंखियां, तरल रश्मियां सुलझायेंगी,
तो समझूंगी देव, मुझे ही आये हो फिरसे अकुलाने !

रातें काली मतवाली - सी
बरसा जायेंगी मस्ताई,
साथी बिन, एकाकीमें प्रिय,
लाख सुनाई नींद न आयी,

जब तारोंका नन्हा-सा जी बहलायेगा चन्दा आकर,
तो समझूंगी आयेंगे प्रिये, मेरा भी फिर जी बहलाने।

सांध्य गगनमें हलके बादल
सो जायेंगे पांव पसारे,
बिहगोंकी उड़ती टोली तब,
गायेगी बस गीत तुम्हारे,

जब दिनकर सन्ध्याके माथेपर कुंकुम बरसा जायेगा,
तो समझूंगी आवोगे प्रिये मुझको भी तुम आज सजाने।

बदली मचली-सी आयेगी,
पर्वतका आलिंगन करने,
नदियां उमड़ी-सी जायेंगी,
अपने सागरका जी भरने,

काले काले बादल प्रिय, जब आयेंगे आंसू बरसाने,
तो समझूंगी आये हो प्रिय, एक बार फिर मुझे रुलाने।

सूखा होगा पदप जीवन,
फिर जीवन भी शेष न होगा,
आशा होगी फिर जीवनकी
इसीलिये तो क्लेश न होगा,

जब पतझर आयेगा निष्ठुर, नीरस पादप कर जायेगा,
तो समझूंगी दुख क्यों हो फिर आये हो तुम मुझे मिटाने।

—रीजेण्ट हाउस कूबड़ी बाजार—मसूरी

प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको

शिवशंकर वाशिष्ठ

जिन्दगीके सत्यसे परिचित बहुत हूं किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूं मैं।
प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको, क्योंकि अपने आपमें इन्सान हूं मैं!

आज भी कमजोरियां शृंगार बनकर नील नभके मोतियों-सी झांकती हैं,
हिमकणोंके रूपमें गिरकर धरापर फूल-पल्लवके प्रणयको आंकती हैं;
देख लो कमजोरियोंका दाग अब भी चाँद सीनेसे लगाये घूमता है,
बादलोंके गहन गह्वरसे निकलकर कौन जाने किस अधरको चूमता है?

कभी इन कमजोरियोंसे त्राण पाकर कौन जाने बन गया हो वह स्वयम्भू?
जो चिरन्तन सत्य है सम्पूर्ण जगका वह बना हो किसी दिन मेरा अहम् छू।
बाँधती निस्सीमको भी छोरमें जो मुक्ति वह कमजोरियोंमें ही पली है,
मुक्तिकी पायल चरणमें डाल करके झूमती गाती कहीं अचला चली है;

पल रहे कमजोरियोंकी गोदमें सब, किन्तु फिर भी आप खुदको छल रहे हैं,
देखकर जगकी जघन्य कृतघ्नताको, खिल पड़ी जो अधरपर मुसकान हूं मैं।
जिन्दगीके सत्यसे परिचित बहुत हूं, किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूं मैं।
प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको, क्योंकि अपने आपमें इन्सान हूं मैं।

जग छिपाता है निजी कमजोरियोंको, पाप करता है फिर भी पुण्यात्मा है।
ओढ़ करके शेरकी खाल तनपर स्यार बन सकता क्या कभी वीरात्मा है?
बस यही है फर्क मुझमें और जगमें, मैं न अच्छे औ बुरेको मानता हूं,
आदमी हूं, आदमीकी यह महत्ता छिप नहीं सकती इसे मैं जानता हूं;

जग करे उपहास या बदनाम कर दे, यह कदम तो चल पड़े अब कब रुकेंगे,
आंधियां आयें कि झंझावात होवे, काफिले जो चल पड़े चलते रहेंगे;
मृत्युसे परिचय पुराना हो चुका है, इसलिये जीवन उसीसे खेलता है,
जो हृदयके तारको झंकार देते यह हृदय उनके लिये सब झेलता है;

पी चुका हूं मान औ अपमानको मैं, किन्तु फिर भी प्यास बाकी रह गयी है;
सामने साकीके प्यासा रह गया जो, बस उसी अभिव्यक्तिका अरमान हूं मैं।
जिन्दगीके सत्यसे परिचित बहुत हूं, किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूं मैं।
प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको, क्योंकि अपने आपमें इन्सान हूं मैं।

—आहूजा कालेज, विट्ठलवाड़ी–रनाडे रोड, (दादर) बम्बई–२८

जलदसे धरा

जयदेव अम्बष्ट 'मधुकर'

ओ श्याम सलोने जलद ! गगनके मतवारे !!

झर - झर आतुर-से बरस रहे
जाने कबसे, कुछ ज्ञात नहीं ।
मिलती न बुंद भी एक, मुझे
लगता मानों बरसात नहीं ।

यह सांझ-उषा मनभावन-सी
नभके क्षितिमें ही लहराती ।
शीतल करती जाने न किसे,
मेरे प्राणोंकी लौ जलती ।

उठती प्रचण्ड ज्वाला पल-पल,
फूटतीं पपड़ियां छातीपर ;
उजड़े सारे शृंगार—साज,
सुधि मेरी तुझे न आती पर ।

तुम बरस रहे झुक, झूम-झूम
नभसे निशिवासर चिर अविरल ।
लुट रही किन्तु जाने न कहां
ऊपरकी ही रस-धार प्रबल ।

मैंने ही अन्तर फाड़ कभी—
था किया गगनमें रस प्लावन ।
फूटी पर मेरी ही किस्मत,
सूना-सूना-सा गृह-आंगन ।
निरख रहे अपलक प्यारे नभ नयन तृषित रतनारे ।
बरस रहे अमृतके बदले हिय - दाहक अंगारे ।।
प्यारे श्याम जलद ! मतवारे !!

'मधुर' कार्यालय, केन्दुआ, पो० सोनो, जिला—मुंगेर (बिहार)

किन्नरी-सी चाँदनी

शलभ

(शरद पर्वके प्रति)

प्रीतकी धरती सजग हो सुन रही नूपुर-स्वरोंको,
आ रही नभसे उतरती—किन्नरी-सी चाँदनी !

- १ -

विश्व जयके स्वप्न—रतिकी पलक-पटमें पल रहे हैं,
औ' मदन-सा चाँद, नभमें बैठ करके मुस्कराता !
दुन्दभीका नाद दिलकी मधुर धड़कन बन गया है,
हो रहा रोमांच भूका, आज तृण-तृण गीत गाता !
सुन रहा मृग ठिठक मन-सा चौकड़ी भूले, सभी कछु,
गंधवाही बह रहा है प्राणमें भर मधुर मृगमद !
कान ऊपरको खड़े, निश्छल निगाहें निरखती हैं,
चन्द्र - किरणोंसे चमकते शरदके दो श्वेत नीरद !
बह रहे क्षितिजान्त तटपर आह ! स्वप्नोंकी तरीपर—
पाल बांधे चाँदनीका, वे कलाधरसे गुणी !
आ रही नभसे उतरती—किन्नरी - सी चाँदनी !

- २ -

कुमुद-सी आंखें खुली क्या-खुल पड़ी निधि स्वप्नकी सब,
ताजमहलोंसे लगे उठने अरे मीनार - गुम्बज !
और लगता चिर प्रतीक्षा-सी चली तुम आ रही हो,—
उस सुभग 'दालान'पर धरकर मृदुल निज चरण-अम्बुज !
स्कंधपर वीणा धरे, अभिसारकी गत जब बजायी—
तो हृदय-भू शान्त हो सुनती प्रणयकी श्याम यमुना !
हो तरंगित भावकी उर्मि उमगकर चौंकती इक,
उछलती उल्लाससे जलकी फुहारें—बिखर सपना !
स्वर्ग भूको गौर बाहोंमें कसे निज, दूर तक है—
फैल छायी रूपकी यह चाँदनी उन्मादिनी !
आ रही नभसे उतरती किन्नरी - सी चाँदनी !

- ३ -

एक तुम हो और मैं हूं—स्वप्न - संगमरमर - धरापर,
बीन निज गत - मूर्छनाकी गन्धसे बेसुध हुई है !
शिथिल पड़ती जा रही मिजराबपर अंगुली तुम्हारी,
रूपकी इस छांहमें यह चेतना भी सो गयी है !
धो रहा हूं आज यह अनुराग मेरा और तेरा,
शरदकी इस चाँदनीकी जाह्नवीके विमल जलसे !
प्रात आयेगी अरुण ऊषा नवेली अर्चना हित,
और पूजेगी हमारी प्रीत कुंकुमसे, कमलसे !
प्रेमकी सरसी हमारी बह रही मंथर, उसीमें—
बूड़, अवगाहित बने—वह शतदलोंकी स्वामिनी !
आ रही नभसे उतरती किन्नरी - सी चाँदनी !

- ४ -

दूर—हंसोंसे धवल पांखी इधर ही आ रहे हैं,
पूर्व नभके छोरसे तिरते हुएसे भाव - तन्मय !
उन सनोवर कुंजके सिरसे गुजरते जा रहे हैं,
झर रहे पथमें उन्हींके मौलश्रीके फूल मधुमय !
कौन-सा यह सर्ग कविके काव्यका सुन्दर खुला है,
चित्रमय-सा हो गया संसार मनका जिसे पढ़कर !
लग रही है भीड़, कैसी शान्त हलचल, वात चंचल,
प्रीतकी सौरभ महकती चाँदनीके चारू मन्दिर !
क्षीर-सागर - सा लहरता जा रहा उर प्रेम-दरिया,
चाहते डूबे न कब भी यह मिलनकी यामिनी !
आ रही नभसे उतरती किन्नरी - सी चाँदनी !

- ५ -

टिटहरीके 'टिव' स्वरोंमें दे रहा तट है निमन्त्रण,
लौट फिर-फिर आ रही लख ! वीचि वसुधाके किनारे।
देखती हो !—अट्टहासोंके भरे मुंह हीर कणसे,
बन रहे इस चाहकी चट्टानके आधार सारे।
वीचियां उल्लास - सी टकरा रहीं अठखेलियां कर,
खूब ही झकझोरतीं—चट्टान फिर-फिर मुस्कराती।
कल्पनाकी नावमें तिरते निकल हम दूर आये,
स्वप्नकी लहरें जहां लिखती प्रणयकी प्रेम - पाती।
आज उर यह स्वर्गके सम्राट - सा ही हो रहा कुछ,
पा समीप प्रिये ! तुम्हीं-सी कामना-सी कामिनी।
आ रही नभसे उतरती किन्नरी - सी चाँदनी !

—गंगागली, गणेशघाटी–उदयपुर

मिलनकी रात

रमाशङ्कर सक्सेना

प्रिय-मिलनकी वह रात री सखि।

नाचती स्मृति पटलपर है सदा दिन रात री सखि॥

बहता हुआ वह मन्द गतिसे
सुरभि ले शीतल पवन।
वह सरित तट अति ही मनोहर
वह मेरा मंजुल सपन।

स्वच्छन्द वह विचरण-रमण—वह प्राण-प्रियका साथ री सखि।प्रिय

उन तारकोंके साथ ही—
मेरे हृदयकी वह कपन।
वह प्राणप्रियका साथ मेरे
परिहसन – प्रहसन — हसन।

सुस्मित वदनसे अधर चुम्बन हाथमें मृदु हाथ री सखि॥प्रिय॥

मौन भाषामें दृगोंसे
हृदयकी अभिलाष कहना।
कामनाकी उर्मि - सा, इस
पारसे उस पार बहना।

वह चन्द्र प्रियतम पा खिली निशि ज्योत्स्नास्नात् री सखि॥प्रिय।

वह दूर्वाके हरित मखमल—
से बिछे मृदु शयनपर।
प्रीति अन्तरसे उमड़ जब
छलक आयी पल - नयनपर।

प्राण प्रियकी उन भुजाओंनें बिछा मृदु गात री सखि॥प्रिय॥

वह प्राण प्रियकी क्रोड़में
सुस्मित मेरा अवनत वदन।
वे शीलके परिधानमें
अलसित सलज मेरे नयन।

चिर-स्मृता चिर नवल-सी चिर स्नेहप्रद वह बात री सखि।प्रिय॥

—छाछू कुआँ, लखनऊ

गीत

ब्रजेन्द्रपाल सिंह

करने प्यार सभी चल देते, पर करना कुछको आता है।

एक प्यार करता है निश - पति
कितना मादक - स्वच्छ - सुहाना
जिसे देखकर नर सोते हैं
सोते हैं खग छोड़ तराना।
और दूसरा करता है रवि, कैसे उसको मैं कह पाऊं—
नर-खग पराधीन होते हैं, जगमें क्रन्दन मच जाता है।

(दो)

एक प्यार है भ्रमर पुष्पका,
भ्रमर पुष्पको जीवन देता
पुष्प उसे इसके बदलेमें
अपने जीवनका धन देता।
और दूसरा प्यार कहाता दीपक और शलभका प्यार,
वह यों ही जलता रहता है, वह उसपर जल मर जाता है।

(तीन)

एक प्यार है कवि - कविताका
कविता कविसे रचना पाती
कविता भी इसके बदलेमें
अपने कविको अमर बनाती।
एक प्यार है वृक्ष - पानका वृक्ष पानको जीवन देना,
पान तनिक सम्बन्ध निभाकर पृथक सदाको हो जाता है।
करने प्यार सभी चल देते, पर करना कुछको आता है।

ग्राम-पो०—हसौना जगमोहनपुर, (अलीगढ़)

गीत

मनमोहन 'सरल'

जागरणमें स्मृति तुम्हारी, स्वप्नमें साकार हो तुम,
इसलिये हर गीतमें, मैं छबि तुम्हारी आंकता हूं!
ढल गयी जब स्वेदकी फसलें उगाती धूप है
ढल गया जब सांझका अरुणिम सिंदूरी रूप है,
तब गगनके नयनमें भी छलछला आयी निशा
और तमकी बांसुरी भी कर उठी विद्रूप है;
मैं तुम्हारे उन जड़ाऊ कंगनोंसे रोशनी पा
और सबके वास्ते ये चाँद तारे आंकता हूं!
हो गयीं पलकें सुहागिन इस निंदारी रातमें
सज गयीं रंगीन परियां आप स्वप्निल गातमें,
फासला मीलों कमी जो, एक बित्ताभर न बाकी
स्पर्श अधरोंपर अधरका प्यारकी सौगातमें;
मैं तुम्हारा भी दरस पाता, परस पाता सपनमें
इसलिये ही हर नयनमें स्वप्न बनकर झांकता हूं!
राह घुंघराली अलक-सी, सामने बिखरी पड़ी
श्वास कन्धोंपर उमरका बोझ ले आगे बढ़ी,
पांव चलते थक गये पर उम्र दो डग ही चली
जिन्दगीको प्यारकी हर बांहसे राहत मिली;
मैं तुम्हारी गर्म मांसल बांहकी पहचान कर लूं
इसलिये ही हर डगरकी धूल अबतक फांकता हूं!
काजली कोरक तले अनगिन समुन्दर पल रहे
हर अधरकी पपड़ियोंपर जागते मरुथल रहे,
प्यास आंसुका विरोधाभास घुलमिल-सा गया
छू तुम्हारी उपवनी सांसे निमन्त्रण मिल गया;
अब तुम्हारे किसलयी करसे चषकका भ्रम हुआ है
इसलिये उस ओर खोले ओठ मनके ताकता हूं!

—१३ राजपूत क्वटर्स, मेरठ

हे वसंतके दूत

गोविन्द श्रीवास्तव

हे वसंतके दूत —
माधुर्य्य भावके उद्दीपन,
पतझड़का मर्मर रोदन,
विकलांग मनुजताके दर्शन,
सुखमें दुखका प्रत्यावर्तन,—
कह दो वसंतसे
इस धरणीपर
अभी नहीं
अपना साज सजाये !

मंजरित आम्र—
डाली डाली है बौरायी,
बौरें पुष्कल छबि भर लायी
मदमाती गंध उड़ी उनकी
तब चपल समीरण इतरायी
लेकिन आहत चेतनता है,
जन जनका मन शंकित-सा है
क्या काम वसंती वस्त्रोंका
जब वस्त्रहीन जग रोता है
तब हे वसंतके दूत, वायु—
कह दो उससे
इस धरणीपर
अभी नहीं
अपना साज सजाये !

पिककी कूजन, अलिका गुंजन,
नियति नटीका नव-नर्तन,
मानव मनकी आकुल सिहरन,
जड़ताकी घातोंसे रोदन,
जीवन दुकूलके ओर छोर,
तूफ़ान भंवरमें फंसे छोर,
इसमें वसंतकी मादकताका
स्वर डूबेगा निश्चय ही
तब रे वसंतके दूत अलि, पिक—
कह दो उससे
इस धरणीपर
अभी नहीं—अपना साज सजाये !

चहुं ओर जगतमें भीषणता,
पैशाचिकता, जनरव डरता,
मानव मानवको डसनेको
अपना पैना फन फैलाता
धरतीने त्यागी कोमलता
तब हे वसंतके दूत-मृदुल दल—
कह दो उससे
इस धरणीपर
अभी नहीं—अपना साज सजाये !

यह प्रकृतिका परिवर्तन है
सोऽहंका यह उद्बोधन है
इस सरस तत्वके स्वागतमें
मेरा आतुर मन तत्पर है :
पर यह कैसे सम्भव है जब
मनके काले तनके गोरे
मानवके हँसते उपवनका
नाश कर रहे—
तब हे वसंतकी सांस-मधुरता—
कह दो उससे

इस धरणीपर, महानाशसे बचनेके हित
अभी नहीं—अपना साज सजाये !

कौन कहेगा स्वगत गान तुम्हारा
कौन सुनेगा
नव यौवन सन्देश सुनहरा
जर्जर मन या कृश तनवाले
नंगे भूखे पग-ठुकराये
क्या तुम इनके वक्षस्थलको
रौंद सकोगे,
क्या तुम इतने निष्ठुर होकर
इस धरतीपर विचर सकोगे ?
तब हे वसंतमें लीन-रंगीले मनवालो—
अपनी आहोंको लो समेट
कह दो वसंतसे
इस धरणीपर
अभी नहीं
अपना साज सजाये !

—गवर्नमेंट हिन्दी नार्मल स्कूल, खण्डवा (म० प्र०)

गीत

सुरेन्द्र मोहन मिश्र

जब नीले अम्बरकी गोदी मेघोंसे भर जाती होगी ;
सच कहना तब तुमको मेरी क्या याद नहीं आती होगी ?

जब मेरे मधु गीतोंके स्वर
इन काले मेघोंको छूकर,
धीमे धीमे आते होंगे
तेरी अधसोई पलकोंपर,

तब स्वप्न बिखर जाते होंगे, नव चित्र उभर आते होंगे।
हर बात भूल जाती होगी, क्या याद नहीं आती होगी।

जब सन्ध्याका यह सूनापन,
डंक देता होगा तेरा मन,
तब बरबस मेरी यादोंसे
भर ही जाते होंगे लोचन,

तब अश्रु उमड़ आते होंगे, दो फूल हुलक जाते होंगे।
मुख कली मुरझ जाती होगी, क्या याद नहीं आती होगी।

जब कभी चाँदनी रातोंमें
चन्दासे बातों बातोंमें,
देती होगी मेरा परिचय
खिलते प्रातः जलजातोंमें

तब हृदय तड़प जाता होगा, बीता क्षण मुस्काता होगा।
रह रहकर रो जाती होगी, क्या याद नहीं आती होगी।

—काव्य कुटीर, चंदौसी
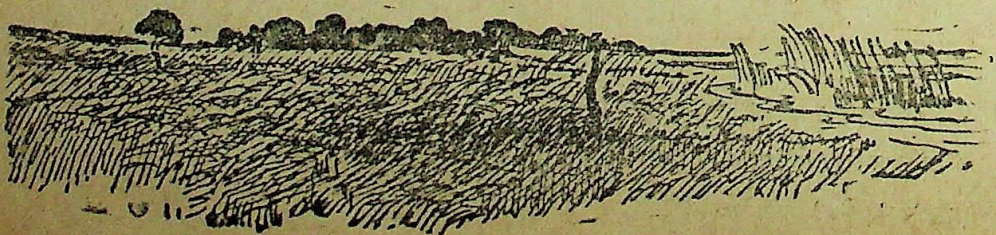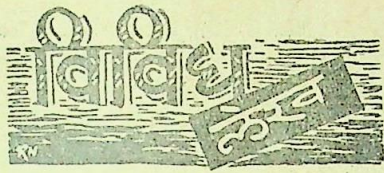
फ्रेंच रिवियेरा और एल्पस

ए० एन० सेन

मोण्टी कार्लो दस हजार अधिवासियोंका एक छोटा-सा नगर है, जो दो अन्य नगरोंके साथ मिलकर आठ वर्ग मीलका मोनाको राज्य बनाये हुए है। इसका शासन 'प्रिन्स आफ मोनाको'के हाथमें है। फ्रान्स तथा इस राज्यके बीच चुंगी आदिकी बाधाएं न होनेके कारण दोनों राज्योंके बीच किसी प्रकारका व्यवधान नहीं आता। मनोरम उद्यानें,
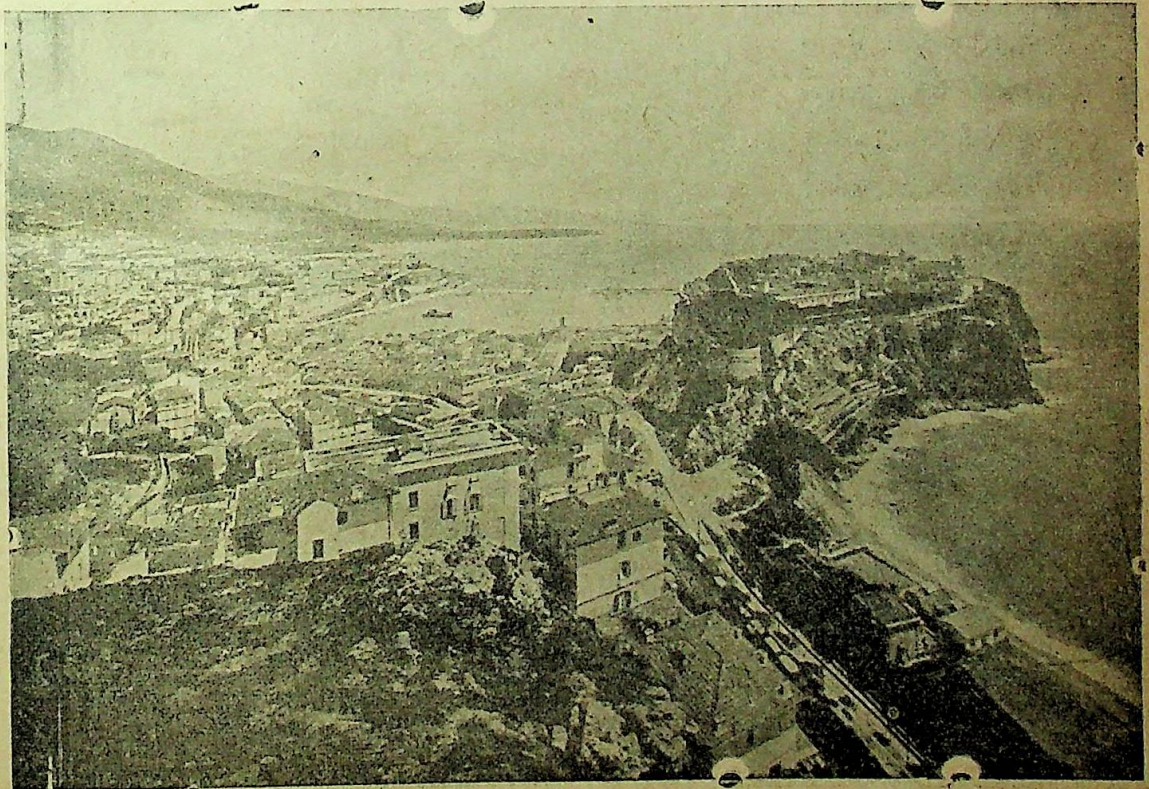
मोनाकोका एक दृश्य
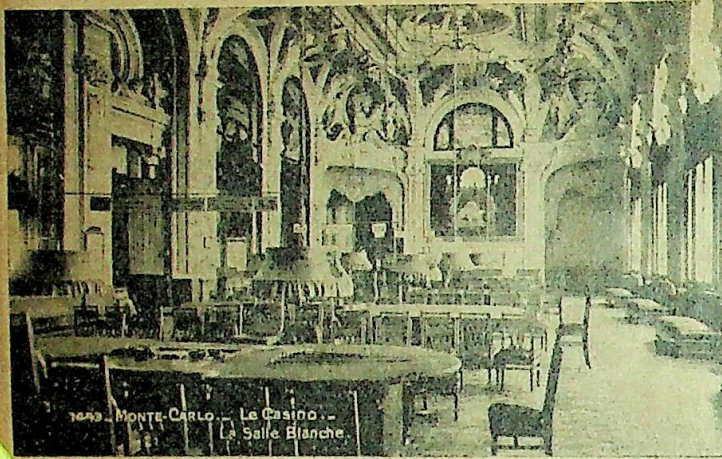
मोण्टी कार्लोका द्युत-गृह

समुद्री विचित्रताओंका एक अजायब घर भी है। पश्चिममें नीस और पूर्वमें इटालियन सीमापर स्थित मेनण्टन तक सुन्दर दृश्योंकी भरमार है।

मोण्टी कार्लो अत्यन्त छोटा नगर है, किन्तु इसकी प्रसिद्धि दुनियाके कोने-कोनेमें हो गयी है, क्योंकि यहीं वह विश्व विख्यात 'कैसिनो' या द्युत-गृह है, जिसकी सफेद दीवारें और चमकदार ढालू छत खूब दूरसे दिखायी देती हैं। मुगल बादशाहोंके दीवानखाने जैसी समृद्धिपूर्ण बंगले, पैरिसी दूकानें, आनन्ददायक छोटी-छोटी चायकी दूकानें यहांके एक सीमित क्षेत्र या एल्पस पर्वतके पाददेशमें अवस्थित हैं। जुआसे यहां इतनी आमदनी होती है कि यहांके निवासियोंको किसी प्रकारका टैक्स या कर नहीं देना पड़ता। किन्तु यहांके लोगोंको जुआके अड्डोंपर जानेकी भी इजाजत नहीं है।

द्युत-गृहका उद्यान

कुछ और ऊंचाईपर मोनाको नगर है, जिसके मध्यमें राज-भवन है तथा

सिस्टरान

डिगना

ग्रेनोबल

जिनेवा

मेस्केलाके खड्ड तथा सुरंग

एनेसी
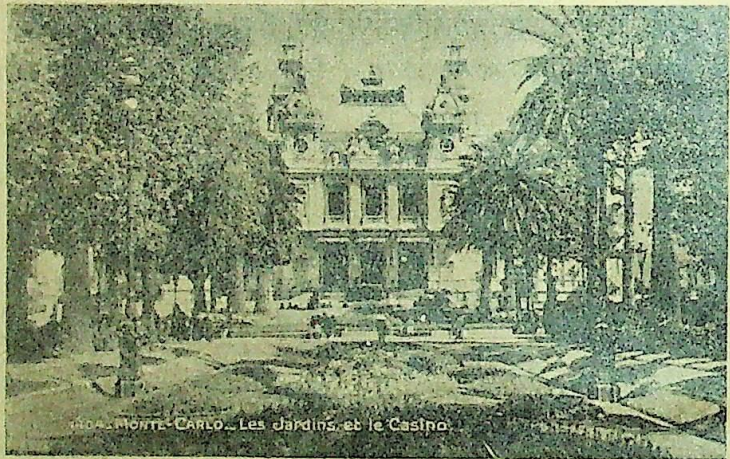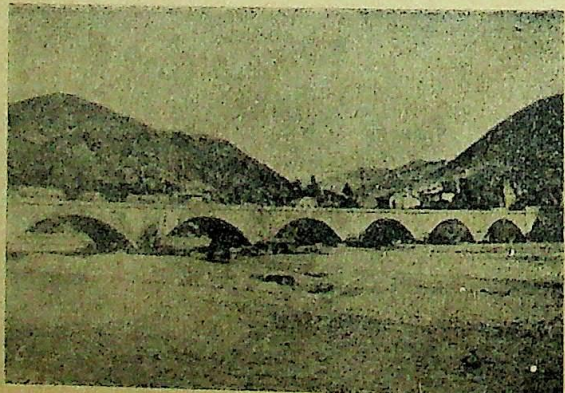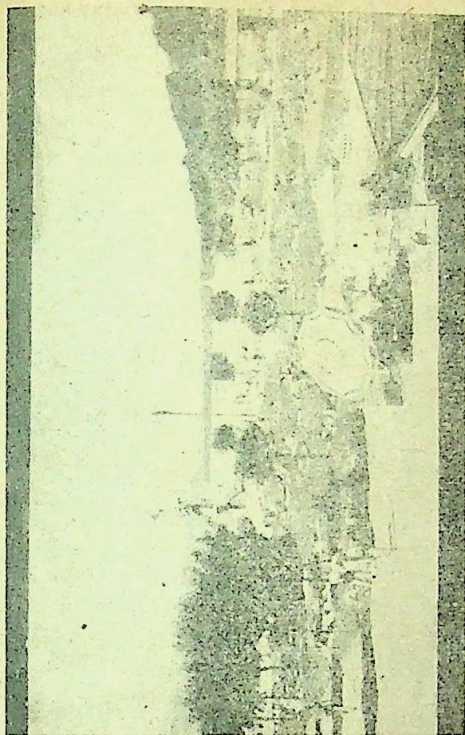
बड़ी हालमें यहां जुआ होता है। यहां चारों ओर अत्यन्त रमणीय और आकर्षक उद्यान हैं। पूर्वमें यहां यूरोपके बड़े-बड़े ड्यूक आदि ही आया करते थे, पर अब उनके दिन समाप्त प्राय हैं और उनका स्थान हालीवुडके अभिनेता तथा अभिनेत्रियां ले रही हैं। दुनियांके कितने ही करोड़पतियोंको यहां पाई-पाई खोकर नंगा होना पड़ा है। ग्रीष्म ऋतुमें ही यहां भीड़ बढ़ती है।

इस नगरको सीढ़ियोंका नगर कहा जाता है, क्योंकि पहाड़पर बसा रहनेके कारण स्थान-स्थानपर सीढ़ियोंका

यह तुम्हारा सम्राट है : यदि कोई उसे मारना चाहता है तो गोली चलाये !' इन शब्दोंसे नेपोलियन उन सैनिकोंके हृदय जीत लिये जो उसे गिरफ्तार करने आये थे।

उपयोग किया गया है। 'मौण्ट एन्जेल गोल्फ कोर्स' दुनियाका सबसे अधिक खर्चीला बताया गया है। चट्टानोंको काटकर यह मैदान तैयार किया गया है। यह मैदान भी सीढ़ियोंके सहारे क्रमशः ऊंचा होता गया है। गोल्फ खेलके बड़े-से-बड़े विशेषज्ञ भी इस मैदानको सर्वश्रेष्ठ बताते हैं।

नीससे उत्तरकी ओर जो प्रसिद्ध सड़क जाती है, वह यद्यपि बहुत दिनों तक सीधी तथा बराबर रही, पर बादमें वह खूब टेढ़ी-मेढ़ी और सुरंगोंवाली बन गयी। वर्गोन्स तथा मोरियाके दर्रोंसे गुजरते हुए हम नेपोलियन पथसे बरेमी पहुंचे और वहांसे डिफिन होते हुए सिस्टरों तक गये। यहांसे हमारा पथ पृथक हुआ और हमें 'एल्पस आफ डाफिनी' दिखायी पड़ा। फिर हम 'क्रोइक-हाते'के दर्रेसे पूरी उंचाईपर पहुंचे और धीरे-धीरे नीचे उतरकर ग्रोनोबल देखा। फ्रान्सका यह एक अत्यन्त सुन्दर नगर है। नेपोलियन-पथ इसी नगरसे जाता है। यहीं नेपोलियनने उन सैनिकोंका हृदय जीत लिया था, जो उसे गिरफ्तार करनेके लिये भेजे गये थे। नेपोलियन यहांसे पेरिसकी ओर एक विजयीकी भांति बढ़ा था और १०० दिनके बाद उसने वाटरलूके युद्धमें सब कुछ खोया था। ग्रीनोबलसे सड़क ग्रीष्म ऋतुके स्वास्थ्यवर्धक स्थान 'स्पा आफ एक्स ला बेन्स'को जाती है और यहां सुन्दर दृश्योंकी भरमार है। दूरमें पहाड़ोंके मनोरम दृश्य हैं तो निकटमें घाटियोंके आकर्षण भी अत्यन्त मोहक लगते हैं। फिर झीलपर बसे एनेसीका क्या कहना! यहींसे आगे बढ़ते हुए हम झील जिनेवा तथा मौण्ट ब्लांक आदिकी शोभा देखते-देखते स्वीटजरलैण्डके द्वार जिनेवा नगरके दर्शन किये।

भगवान बुद्धका जन्मस्थान : लुम्बिनी

भिक्षु जगदीश कश्यप

प्रत्येक वर्ष संसारके विभिन्न भागोंसे आये हुए बौद्ध यात्री लुम्बिनीके अनुपम तीर्थका दर्शन मात्र करके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं। आजकल इसे रुम्मिनदेईके नामसे पुकारा जाता है। यह परम स्थान नैपाल राज्यकी तराईमें स्थित है एवं उत्तर-पूर्व रेलवेके नौतनवा स्टेशनसे लगभग दस मील दूर है। पर यहांसे कोई अच्छी सड़क लुम्बिनीको नहीं जाती और यात्रा बैलगाड़ी अथवा घोड़ेसे ही पूरी करनी पड़ती है। नौतनवामें महाबोधि सोसाइटी द्वारा निर्मित एक विश्रामगृह भी है। दूसरा मार्ग नौगढ़ स्टेशनसे है। यहांसे लुम्बिनी बीस मील दूर पड़ती है। नौगढ़से लुम्बिनी तक सड़क गयी है, इसलिये मोटरसे जानेवाले यात्रीगण इसी मार्गसे जाते हैं।

मध्य-मण्डलमें स्थित चार पवित्र स्थान बौद्धजगत्में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं : लुम्बिनी, बुद्धगया, सारनाथ तथा कुशीनगर। इनके विषयमें स्वयं भगवानने महापरिनिब्बान सुत्तमें अपने अनुपम शिष्य आनन्दसे कहा है, 'आनन्द, ये चार स्थान श्रद्धावान कुलपुत्रके लिये दर्शनीय एवं जानने योग्य हैं। इन चार महत्वपूर्ण स्थानोंमें प्रथम गणना लुम्बिनीकी ही होती है।

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर अलेक्जेण्डर कनिंघमने १८९६ में इस स्थानकी खोज कर अकाट्य प्रमाणों द्वारा इसे प्राचीन लुम्बिनी ही सिद्ध किया था। चारों ओरसे लहलहाते हुए धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरा हुआ यह स्थान अपने प्राचीन प्राकृतिक सौन्दर्यको आज भी व्यक्त करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। भगवान बुद्धके जन्मसे पूर्व यह कपिलवस्तु एवं देवदहनगरके बीचमें स्थित एक सुन्दर उद्यान था, जिसका उपभोग दोनों नगरोंके नागरिक करते थे।

'जातट्ठकथा'के निदान भागमें भगवान बुद्धके जन्मके सम्बन्धमें हम लुम्बिनीका भी बहुत सुन्दर वर्णन पाते हैं। पहले महाराजा शुद्धोदनके कोई भी सन्तान न थी, जिससे राजा एवं अन्य सभी लोग बहुत ही दुःखी थे। एक बार राज्यमहिषी महामाया देवीको स्वप्न हुआ कि एक सुन्दर श्वेत

गान्धारका एक बौद्ध मस्तक

हाथी तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करके उनकी कुक्षिमें प्रवेश कर गया। दूसरे दिन देवीने इस स्वप्नकी चर्चा राजासे की। राजाने चौसठ प्रधान ब्राह्मणोंको बुलाकर इस स्वप्नका फल

पूछा। ब्राह्मणोंने कहा कि महाराज, आप चिन्ता न करें! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। यदि वह गृहस्थ रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि घरसे निकलकर प्रव्रजित होगा तो लोकमें ज्ञानी बुद्ध होगा।

मथुराकी बौद्ध मूर्ति

गर्भके परिपूर्ण होनेपर महामाया देवीको अपने नैहर जाने की इच्छा हुई। राजाने जानेकी आज्ञा दे दी और कपिलवस्तुसे देवदहनगर तकके मार्गको समतल करा दिया तथा ध्वज, पताका, पूर्णघटादिसे समलंकृत कराके देवीको सोनेकी पालकी पर बैठाकर एक बड़ी सेवक मण्डलीके साथ देवदहनगरके लिये भेज दिया। इन दोनों नगरोंके बीचमें लुम्बिनी वन नामक एक साल-वन था। उस समय वह वन पूर्णरूपेण कुसुमित एवं प्रफुल्लित था। शाखाएं सुन्दर पुष्पोंसे लदी थीं। बीच-बीचमें भ्रमरगणोंका गुंजन एवं रंग-बिरंगे पक्षियोंका मनोहारी कलरव इस शोभाको और भी बढ़ा रहा था। उस समय यही भान हो रहा था, मानो लुम्बिनी वन किसी प्रसिद्ध राजाका सुसज्जित नगर हो। प्रकृतिकी इस रम्य छटाको देखकर देवी वहां ठहर गयीं और इस अनुपम सौन्दर्यको घूम-घूमकर देखने लगीं। इसी समय उन्होंने एक सुन्दर शालवृक्षके नीचे जाकर उसकी शाखाको पकड़ना चाहा कि इतनेमें प्रसव वेदना हुई और भगवानका जन्म हुआ। उस समय चारों महाब्रह्मा सुवर्णजल लेकर वहां पहुंचे और भगवानको जलमें रखकर मातासे बोले, 'देवी, सन्तुष्ट होओ! तुम्हें महाप्रतापी पुत्र प्राप्त हुआ है।' महामाया देवीके सत्कारार्थ आकाशसे दो जलकी धाराओंने गिरकर भगवान एवं उनकी माताके शरीरको ठंडा किया। इसके पश्चात् क्रमशः चारों महाराजाओं तथा मनुष्योंके हाथसे निकलकर भगवान 'पृथ्वीपर खड़े हो गये और सात कमल पुष्पोंपर सात पग चले। सातवें पगपर ठहरकर उन्होंने ये गाथाएं कहीं:—'अग्गो हमस्मि लोकस्स, जेट्ठो हमस्मि लोकस्स, सेट्ठो हमस्मि लोकस्स, अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनब्भवो।' अर्थात् 'मैं लोकमें अग्र हूं, मैं लोकमें ज्येष्ठ हूं, मैं लोकमें सर्वश्रेष्ठ हूं, यह मेरा अन्तिम जन्म है, अब पुनः जन्म नहीं लेना है।' इसके पश्चात् यह दल देवदह न जाकर कपिलवस्तु ही लौट आया। साथमें देवदहके लोग भी आये।

'सुत्तनिपात'के अनुसार भगवानका जन्म शाक्योंके एक गांव, लुम्बिनी जनपदमें हुआ था। जन्मके सम्बन्धमें 'कथावत्थुप्पकरण'में भी लुम्बिनीका नाम आया है। 'मज्झिम-निकाय'की अट्ठकथा 'पपंचसूदनी'में कहा गया है कि देवदह जाते समय बुद्ध यहां ठहरे थे और यहीं 'देवदहसुत्त'का प्रवचन भी किया था।

भगवानका जन्म-स्थल होनेके कारण प्रारम्भसे ही यह एक

तीर्थ स्थल माना जाने लगा है। जब मौर्य-सम्राट अशोकने अपनी तीर्थ-यात्राएं प्रारम्भ कीं तो अपने शासनके बीसवें वर्षमें वे लुम्बिनी भी आये और अपनी इस पवित्र यात्राको चिरस्थायी बनानेके हेतु यहां भी उन्होंने अपने स्तम्भ लेखको प्रतिष्ठापित किया। इसमें पांच पंक्तियोंका एक लेख उत्कीर्ण है, जो स्पष्टरूपसे घोषित करता है कि यहींपर भगवान बुद्धका जन्म हुआ था। अतः लुम्बिनी ग्रामको और करोंसे मुक्त किया जाता है तथा अब इसे अष्टभाग ही करस्वरूप देना होगा। सम्भव है कि प्रियदर्शी सम्राट अशोकने यहां भी एक स्तूप तथा महाविहारका निर्माण कराया हो, क्योंकि उसके भग्नावशेष आज भी मिलते हैं।

सम्राट अशोकके पश्चात् प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियानका ऐतिहासिक वर्णन हम इस स्थानके विषयमें पाते हैं। इसने भी जातकट्ठकथाके समान ही बुद्ध जन्मके सम्बन्धमें लिखा है। साथ ही उन चार महत्वपूर्ण स्थलोंका भी वर्णन किया है, जिनका भगवान बुद्धकी जीवनचर्यासे महान् सम्बन्ध है। पर लुम्बिनीमें निर्मित किसी महाविहार तथा अशोकस्तम्भके विषयमें उसने कुछ नहीं लिखा।

हां, ह्वानच्वांगने इसका विस्तृत वर्णन अपनी यात्रा सम्बन्धी पुस्तकमें किया है। उसने इस स्थानको फाहियानसे दो शताब्दियों बाद ही देखा था। उसने अशोक स्तम्भ, कई स्तूपों एवं स्वच्छ जलसे परिपूर्ण एक जलाशयके सम्बन्धमें भी लिखा है। उसके समयमें भी अशोक स्तम्भ दो भागोंमें टूट गया था और ऊपरी भाग वहीं नीचे पड़ा था, जिसमें अश्वकी आकृति अंकित थी। अभी तक यह स्तम्भ भाग इस स्थलसे प्राप्त नहीं हो सका है।

आधुनिक युगमें नेपाल सरकारने पुरानी ईंटोंसे ही दो स्तूप बनवाये हैं। इनके अतिरिक्त अशोक स्तम्भके पास ही एक मन्दिर है, जिसमें भगवानके जन्मको स्पष्टरूपेण व्यक्त करती हुई एक मूर्ति है, जो मूर्तिकलाका उत्कृष्टतम उदाहरण है। लोग इसे मायादेवीका मन्दिर कहते हैं। विद्वानोंका अनुमान है कि जिसे अशोकने अपने लेखमें 'सिलाविगडमीचे'के नामसे अभिहित किया है, यह उसीकी प्रतिमूर्ति है, क्योंकि शब्दकल्पद्रुमके अनुसार 'सिलाविगडमीच'का अर्थ मायादेवीकी ही मूर्ति होता है।

नेपाल सरकारने यहां खुदायी भी करवाई है, जिसके फलस्वरूप एक प्राचीन विहारकी नींव भी मिली है। इसीके आसपास जीर्ण शीर्णरूपमें विद्यमान एक जलाशयका भी हमें आभास मिलता है, जो आजकल पूर्णतया सूखा ही है। इसके विषयमें यह प्रसिद्धि है कि जन्मके पश्चात् कुमारको यहींपर स्नान कराया गया था। फाहियानने भी इसके विषयमें लिखा है।

पासके जंगलको साफ कराके नेपाल सरकारने इस पुण्य-स्थलपर एक सुन्दर विश्रामगृह निर्मित कराया है, जहां यात्री-गण निःशुल्क रह सकते हैं। आवश्यकतानुसार उन्हें भोजन इत्यादि देनेका भी समुचित प्रबन्ध है। भगवान बुद्धके निर्वाणके पच्चीस सौ वर्ष व्यतीत होनेपर जो बुद्ध जयन्ती वृहद्रूपसे इस वर्ष देश भरमें मनायी जानेवाली है, उसमें लुम्बिनीसे सम्बन्धित अनेक आयोजन हैं। यद्यपि इन आयोजनोंका सीधा सम्बन्ध नेपाल सरकारसे है, फिर भी गोरखपुरसे लुम्बिनी तक जो सड़क आदि बन रही हैं, उनमें भारत सरकारका भी महत्वपूर्ण योग है। आशा है, भगवान बुद्धका यह पुण्य जन्म-स्थल उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होता हुआ भविष्यमें भी जनकल्याणके लिये संसारको अपना अनुपम शान्ति सन्देश देता रहेगा।

विज्ञान-चैतन्य

आचार्य सर्वे

अतिमानसको स्वीकार किये बिना हमारा दुर्बल हृदय एक चरण न उठा पायेगा। उसमें विज्ञान-चैतन्यको स्वीकृति दिये बिना सजीव स्पन्दनोंका कार्य भी पर्याप्त प्रगति ग्रहण न कर पायेगा। मानव उसे पूरे मनसे स्वीकार किये बिना इस विज्ञान—प्रधान युगमें आणविक प्रतिक्रियाओंपर नियन्त्रण न रख सकेगा। आत्म-चैतन्य, विश्वमें लगातार मानव राज्यमें होनेवाली निर्दोष जनता व गोआदि अहिंसक प्राणियोंकी निर्मम हत्याओंके कारण पैदा हुए हिंसा-विकार द्वारा विघटित होता जा रहा है। निरपराध प्राणियोंकी हिंसासे जो दैन्य भाव प्रतिशोधकी प्रतिरक्षात्मिका प्रतिक्रियाके समवायमें उच्छ्वासित होता रहा है, उसे आविष्ट किये हुए काले अन्धकारने विशुद्ध आत्म-चैतन्यको ठीक उसी प्रकार ढक लिया है, जिस प्रकार कि भौतिक व्यवहार क्षेत्रमें सत्यका मुख सुवर्ण द्वारा आवरित किया जाता है।

तमसावृत आत्म-चैतन्यकी विवशताको सबसे अधिक स्पष्ट रूपमें घोषित करनेवाले आध्यात्म वैज्ञानिकोंमें पाण्डीचेरीके ख्यातनामा राजर्षि अरविन्द भी एक थे; जिन्होंने भारतीय योगकी वैज्ञानिक धारामें एक नया सुमन विसर्जित किया। विज्ञान-चैतन्यकी कल्पना आधुनिक युगमें उन्हींके अन्तरालसे प्रसरित हुई। यह विज्ञान-चैतन्य उनके द्वारा स्थापित मतानुसार विशुद्ध आत्म-चैतन्यका एक उत्तम विपर्यय है। उन्होंने अनेक बार लिखा है कि आजके युगमें आध्यात्म शक्तिका सदुपयोग यथोचित अवधिमें यदि करना अभीष्ट हो तो उसका एकमात्र साधन मानसिक नीरवताके अवतरण सिद्ध विज्ञान-चैतन्यको उपार्जित करना ही है। इसी क्रमिक पथपर अतिमानसीकरणकी उदात्त प्रक्रिया सिर उठाती है। वे मन, प्राण और प्रकृति इन तीनोंके अतिमानसीकरणमें विश्वास करते हैं। इसी विचित्र आधारपर उन्होंने भारतीय योगमें रूपान्तरण पूर्वक सुरक्षित व सम्पूर्ण जीवन-प्रवाहका एकदम नवीन अध्याय जोड़ सकनेकी महान आध्यात्मिक गवेषणाका पथ प्रशस्त किया है और भारतीय योगको परम्परा प्रसित अन्य तमससे निकालकर एक उन्मुक्त प्रकाशपूर्ण राजमार्गपर ला खड़ा किया है। इसी उत्क्रान्ति-पथपर विधिवत् अग्रसर रहते हुए भारतीय योगी निकट भविष्यमें ही सर्वयोगके उच्चतम शिखरसे आणविक संहार शक्तिका पटाक्षेप करते हुए सार्वभौम अतिमानसिक अवतरणकी विश्व-शान्ति प्रवर्त्तक घोषणा करेगा।

इस आध्यात्मिक मोड़से पहलेका मार्ग सीधा और सरल था, जिसके लिये सर्व प्रथम मानसिक एकाग्रतासे प्रोत्साहित व समाधिमें विसर्जित कैवल्यनिष्ठ साधनाकी आवश्यकता थी; जिसमें प्रकृतिके रूपान्तरणको अस्वीकार किया गया था। जहां अतिमानसको पूर्ण रूपान्तरके लिये आध्यात्म क्षेत्रसे भी किसी उच्चतम लोकसे मन, प्राण व प्रकृतिमें उतारने की अपेक्षा वहीं समाधिस्थ हो जानेकी प्रशान्त मान्यताके लिये पूर्ण आस्था होते हुए भी आधुनिक विश्व जन्य दुर्बलताओंकी प्रतिक्रियाके लिये कोई उत्सुकता न थी। यह कार्य विशुद्ध आध्यात्म-चैतन्य परमेश्वर छोड़नेकी ही भावनाका समादर था। सम्भवतः उन दिनों किसी ऐसी आत्मनिर्भर चेष्टाका प्रयोजन प्रस्तुत ही न हुआ हो अथवा केवल अस्थायी रूपमें किन्हीं विशिष्ट अवसरोंपर ही प्रयोगमें लिया जाता रहा हो। येन-केन प्रकारेण उसको अब पुनः उपयोगिता उपस्थित हो चुकी है। अतएव, आणविक संहार कार्यकी प्रत्याशित प्रतिक्रियाके पूर्व-सूचना-प्रवृत्त स्वरूपमें ही समझिये उस प्रगल्भ प्रतिभामें अतिमानसिक महान अनुभूतिका अभ्युदय हुआ। यही वह विज्ञान-चैतन्य है, जिसे आत्म-चैतन्यके अभावमें एक विश्वस्त आल्टरनेटिवके तौरपर आणविक-निरोध दशामें सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकेगा। यद्यपि उक्त प्रकारकी रोक निरोध न होकर विरोधके आस-पासकी कोई चेष्टा कहला सकेगी, तथापि उसकी प्रभाव शालीनता व सृजनात्मकतापर सन्देह नहीं उठ पायेगा। यह निश्चित है कि ज्यों-ज्यों सूक्ष्म स्तरोंसे क्रमशः भौतिक स्थूल स्तरोंकी ओर अतिमानसिक अवतरणका सविस्तार होगा, त्यों-त्यों आध्यात्म शक्तिका

विकेन्द्रीकरण होनेसे अणुके विघटन क्रमपर अभूतपूर्व चैक प्रयुक्त होता जायेगा। इस प्रक्रियासे मन, प्राण व प्रकृत्तिकी स्वाभाविकताका संहार अवश्यमेव होगा पुनरपि उस क्षतिके सन्तुलन-स्वरूप इनमें अलौकिक शक्तिका स्रोत गतिबद्ध हो जायेगा—इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं। पौराणिक ग्रन्थों द्वारा वर्णित अति भौतिक सत्ताविष्ट विभूतियोंका अवतरण, इसी अध्यायके कुछ ही आगेके पृष्ठोंपर अंकित रहेगा।

यह ध्यान रहे कि इस अत्यन्त प्रभावशाली साधनाकी ओर बेतहाशा दौड़ना, एक इससे भी बड़ा खतरा रहेगा। भारतीय समाधि-लक्ष्य साधना ही सर्वश्रेष्ठ है, यह अविस्मरणीय सचाई है। अतिमानसिक साधना तो उस महान शाश्वत पथके एक पड़ावपर निश्पन्न होनेवाला तात्कालिक उपचार मात्र है। इस चकाचौंधसे प्रभावित होने वा लक्ष्य-च्युत हो जानेकी तिलमात्र भी उपयोगिता नहीं है। देखिये पूर्वकी अतीतगर्भित समग्र साधनामें गर्भ स्पन्दन सजीव हो चुका है, जिसके बढ़ने तक सुरक्षा भावनासे ही आणविक संहार कार्यकी अर्गलाके रूपमें ही विज्ञान-चैतन्यका जन्म हुआ है ; आध्यात्मिक एकाधिपत्यका गढ़ कायम करके और बड़े खतरेको जन्म देनेके लिये नहीं। पश्चिमकी प्रकृति, संहारप्रिया अस्तोन्मुखी-साधनाकी प्रवर्त्तिका रही है—पूर्वका इतिहास इस बातका साक्षी है। उसे विज्ञान-चैतन्यकी कार्य प्रणालीका बोध हो गया तब तो खैर नहीं। वह उसे भी संहार कार्यमें नियोजित कर डालेगा, इस बातकी पूरी आशंका है। इसीसे कहा है कि विज्ञान-चैतन्य ही हमारी योग साधनाका पूर्ण विराम नहीं है। भारतीय साधक पर्याप्त सजगता-पूर्वक शाश्वत लक्ष्यमें स्थिर बने रहे तो विश्व शान्तिको युगान्त तक कोई खतरा नहीं होगा। इसके लिये आध्यात्म-सत्ताके विकेन्द्रीकरण द्वारा प्रशस्त सर्वसुलभ, सर्व-जीवन व सर्व-हितकारी सार्वजनिक स्वरूपमें आचरणीय योग-साधना ही उपयुक्त रहेगी, ऐसी मेरी विनम्र मान्यता है ; जिसे मैं सर्वयोग ऐसा कहता हूं। उसमें दर्शन-चैतन्य पूर्व-परम्परा और विज्ञान-चैतन्य सिद्ध उत्तर-परम्पराका सन्तुलित समाहार निबद्ध है।

—रमेश बुक डिपो, जयपुर (राजस्थान)

तानसेनकी रचनाओंपर नवीन ऐतिहासिक प्रकाश

चन्द्रशेखर पन्त

भारतीय संगीतके विशाल आकाशमें दो नक्षत्र अपनी अनुपम एवं अमिट आभा छोड़कर अस्त हो गये हैं। ये हैं दक्षिणके त्यागराज और उत्तरके तानसेन। दक्षिणकी परम्परा अधिक सुलझी हुई होनेके कारण त्यागराजके जीवन-चरित और रचनाओंपर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है और उनपर प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। परन्तु खेदका विषय है कि तानसेनके जीवन और रचनाओंका ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे अभी उतना स्पष्टीकरण नहीं हो सका है।

मैं भारतीय संगीतके प्रेमियों और मियां तानसेनके मुरीदोंका ध्यान उनकी एक महत्वपूर्ण रचनाकी ओर आकृष्ट करूंगा। स्वर्गीय भातखण्डे जीने अपने अथक परिश्रमसे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिकी क्रमिक पुस्तक मालिकामें जिन प्रामाणिक वस्तुओंका संग्रह किया है, उनमें तानसेनके एक भैरवरागके ध्रुवपदकी ओर मेरा ध्यान विशेष रूपसे गया, जो इस प्रकार है :—

स्थायी : सघन वन छायो द्रुम-वेली माधो भवन,
अत प्रकाश वरन-वरन पुष्प रंग लायो।
अन्तरा : कोकिला खंजन कीर कपोत,
अत आनन्दकारि चहूं ओर झर बरसायो
संचारी : सप्त सूर तीन ग्राम इक ईस,

मूभरछान औक्त जोक्त लागडांट दिखलायो

आभोग : कहे मियां तानसेन सुनो शाहा अकबर,

प्रथम राग भैरव गायो ।

इस ध्रुवपदकी संचारीसे तो स्पष्ट है ही कि तानसेनने अपने प्रधान श्रोता अकबरको ध्यानमें रखकर इसकी रचना की। किन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टिसे इसकी स्थायीके ये शब्द हैं :—

सघन वन छायो द्रुम-वेली माधो भवन,

अत प्रकाश वरन-वरन पुष्प रंग लायो ।

अर्थात् इसमें एक उपवन अथवा बागका वर्णन है। यह कोई सामान्य बगीचा नहीं है। यह माधो भवनका ही उपवन है। इसी भवनमें अथवा इसके बगीचेमें तानसेन विराजमान हैं। उद्यानकी मादक शोभा और मस्तीमें झूमते हुए तानसेन इस ध्रुवपदकी रचना कर रहे हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि यह माधो भवन किस स्थानका सूचक है। इसका पता लगानेके लिये मैं आपको तत्कालीन एक संगीत ग्रन्थकी ओर ले चलूंगा।

पुंडरीक विट्ठलके नामसे संगीतके विद्यार्थी परिचित हैं। इन्होंने संगीत शास्त्रपर चार ग्रन्थ लिखे हैं। ये संस्कृतमें हैं। उनमें एक रागमंजरी है। रागमंजरीके प्रारम्भमें अपने आश्रयदाताका परिचय देते हुए पुंडरीक विट्ठलने कई श्लोक दिये हैं।

उनका संक्षेपमें यह तात्पर्य है कि कच्छपवंशके राजा भगवान दासके दो पुत्र माधवसिंह और मानसिंह सम्राट अकबरके दाहिने और बायें हाथके समान हैं। ये दोनों विनयशील धार्मिक और शूरवीर हैं। इन दोनोंमें भी राजा माधवसिंह तो परम वैष्णव हैं। वे भगवान विष्णुकी आराधनाके लिये सदा नाट्यका आयोजन करते हैं।

आगे चलकर पुंडरीक विट्ठल कई गद्य-पद्योंमें माधवसिंहकी रसिक और विद्वद्जनोंसे सोभित सभाका परिचय देता है। माधवसिंहको यह बात खटकती है कि सभामें संगीत शास्त्रवेत्ता कोई नहीं दिखायी दे रहा है। इसी आक्षेपको दूर करनेके लिये पुंडरीक विट्ठल कहते हैं कि वे रागमंजरी ग्रन्थकी रचना करनेके लिये कटिबद्ध हैं और अकबर इस रागमंजीके रसका मधुप है।

अब हम यदि तानसेनके उस भैरव रागके ध्रुवपदकी तुलना इस रागमंजरी ग्रन्थके उद्धरणसे करें तो हमें दो बातें बिलकुल एक-सी नजर आयेंगी। इन दोनोंमें माधवसिंह और अकबरका नाम साहचर्यसे आ रहा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुवपदका माधो भवन इसी माधवसिंहका भवन है।

इतिहाससे पता लगता है कि सन् १५६२ ई०के जनवरी मासमें अकबरने अजमेरमें स्थित औलिया मुईनुद्दीन चिश्तीकी दरगाहका दर्शन करनेके लिये प्रस्थान किया। जब वह संभर पहुंचा, वहांके राजा बिहारीमल अथवा भारमल कछवाहाने उसका महान स्वागत किया और अनेक सेवाएं अर्पित कीं। भारमलकी कन्यासे अकबरका विवाह हुआ। राजा भगवान दास इसी भारमलका पुत्र था। और भगवान दासके पुत्र मानसिंहका अकबरके राज्य शासनमें कितना महत्वपूर्ण स्थान था, इससे इतिहासके विद्यार्थी अच्छी तरह परिचित हैं।

अकबरकी राजनीति, शासन प्रबन्ध और सेनामें भले ही मानसिंहका बहुत बड़ा स्थान था, किन्तु अकबरकालीन विद्या, नाट्य और संगीतके सक्रिय विकासमें तो मानसिंहके भाई माधवसिंह अथवा माधोसिंहका ही अधिक हाथ रहा होगा। पुण्डरीक विट्ठलकी 'राग मंजरी' और तानसेनका उक्त ध्रुवपद, इस बातको प्रमाणित करते हैं कि माधोसिंहका एक महल था, जो सघन वृक्षोंसे घिरा तथा सुन्दर वाटिकाओं और फुहारोंसे सुशोभित था। उसमें एक नाट्य-मंडप अथवा सभा-मंडप भी अवश्य था, जहां संगीतके उत्सव समारोह होते रहते थे। अकबर भी अक्सर प्रधान श्रोताके रूपमें वहां उपस्थित रहता था। अतः सम्भव है कि आगरेके पास अथवा माधोसिंहके परम वैष्णव होनेके कारण व्रजभूमिमें ही यह माधो-भवन रहा होगा। इसी भवनमें पुण्डरीक विट्ठल आया और इसीकी तानसेनने शोभा बढ़ायी।

पुण्डरीक विट्ठल पहले दक्षिणके फारुखी नरेश बुरहान खांके पास था। फिर वह उत्तरको आया। तानसेन भी पहले
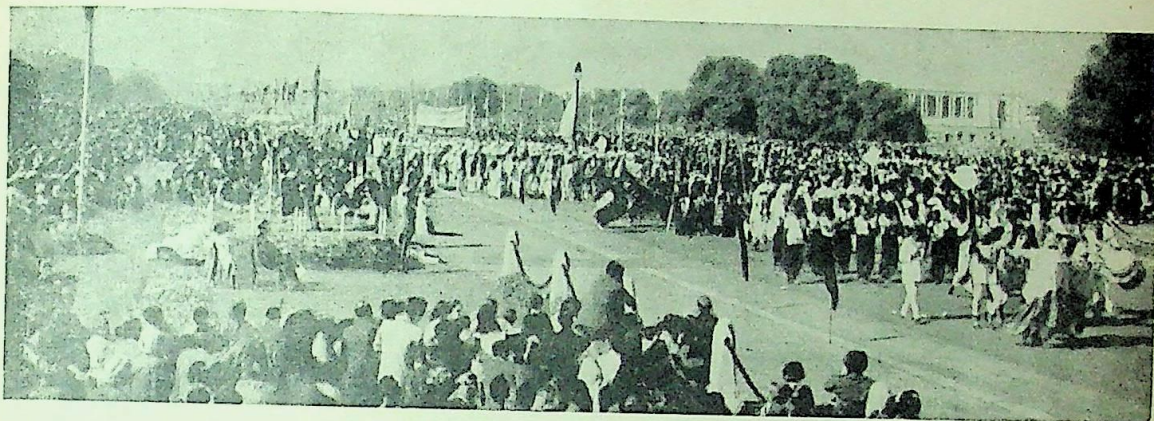
दिल्लीकी सड़कोंपर लोक-नृत्यकी बहार
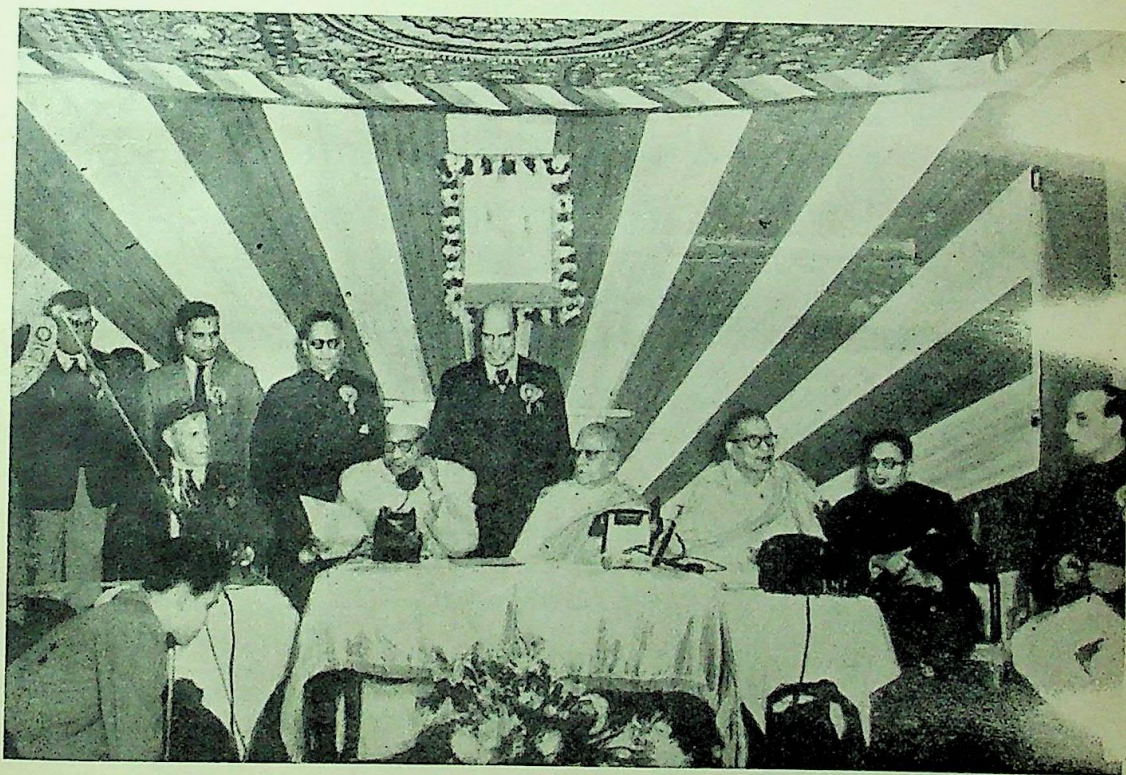
हातिकान्दामें कलकत्ता-लन्दन रेडियो टेलोफोन सर्विसका उद्घाटनके समय श्री जगजीवन राम
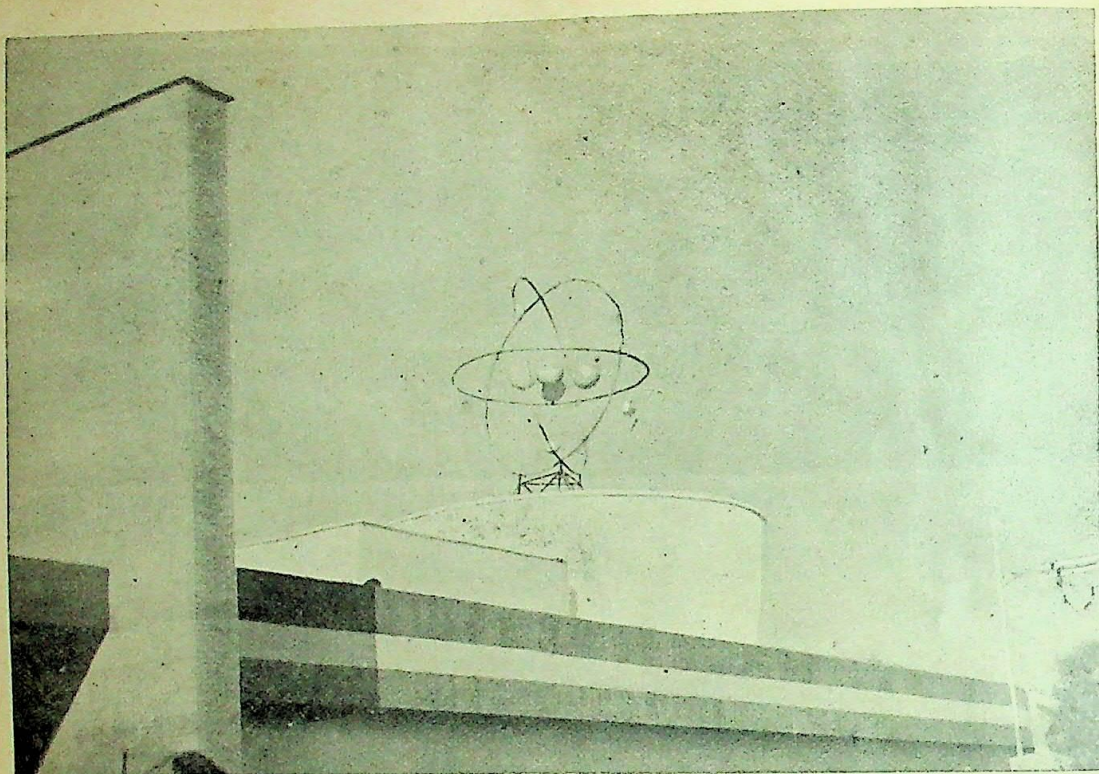
अमेरिकाका 'एटम फर पीस' पैविलियन

चीनी पैविलियनका प्रवेश द्वार

पन्नाके राजा रामचन्द्रके पास था, जैसा कि अकबरनामेसे पता लगता है। वहांसे उसे अकबरने अपने पास बुलाया। उत्तरकी ओर आनेपर पुण्डरीक विट्ठलका मुख्य आश्रय दाता तो पहले माधोसिंह ही था, इसमें कोई सन्देह नहीं। पुण्डरीक विट्ठलकी कोटिके विद्वान और संगीत शास्त्रकार तथा तानसेनको कोटिके सर्वश्रेष्ठ गायकके माधोभवनमें ऐतिहासिक मिलनकी कल्पना निराधार न होगी। पुण्डरीक विट्ठल द्वारा रचित ग्रन्थोंके निर्माण कालका विशेष अध्ययन करके मैं इस निष्कर्षपर पहुंचा हूं कि यह मिलन सन् १५६५ और १५७० के बीच हुआ होगा। यही काल हम उक्त ध्रुवपदके लिये भी निर्धारित कर सकते हैं।

तानसेनका आश्रयदाता तो अकबर था, किन्तु अकबरके पास रहते हुए भी माधोभवनसे उसका आना जाना अवश्य रहा होगा, क्योंकि माधवसिंह परम वैष्णव और रसिक था, इसलिये हरिदास स्वामीके शिष्यको उसके पास अपनी रचनाओंके लिये विशेष प्रेरणा मिलती हो तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है।

अकबरके साथ रहते हुए तानसेन यद्यपि हर प्रकारसे निहाल था, फिर भी आत्मामें निहित वैष्णव संस्कार यकायक जाग उठते थे। इनकी परिपूर्तिके लिये वह कभी-कभी आगरासे व्रज भूमिमें भी आया करता था। इसका परिचय तत्कालीन वैष्णव साहित्यसे मिलता है। स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें उल्लेख किया है कि अष्ट-छापके प्रसिद्ध संत गोविन्द स्वामीका संगीत सुननेको तानसेन अकबरके पास व्रजभूमिमें आया करता था। अबुल फज़लने आयीनेअकबरीमें ध्रुवपद शैलीके अतिरिक्त जिन शैलियोंका वर्णन किया है, उनमें मथुराके विष्णु पद भी हैं। गोविन्द स्वामी आदि अष्टछापके संत जिन पदोंको गाते थे, वे ही विष्णु पदोंके उदाहरण कहे जा सकते हैं। तानसेनकी रच-नाओंका क्रमबद्ध अध्ययन करनेके लिये इस प्रकारकी पृष्ठभूमिके महत्वकी हम अवहेलना नहीं कर सकते।

इकबालनामा तानसेनकी रचनाओंके बारेमें कहता है कि उसकी हजारों चीजें प्रचलित हैं और उनमें कई एक अकबरके नामसे अंकित है। आज भी तानसेनकी जो चीजें उपलब्ध हैं, वे दो कोटिकी हैं। किन्हींमें अकबरका नाम है, किन्हींमें नहीं। उदाहरणके लिये, भैरवके ध्रुवपदमें हम देख चुके कि 'कहे मियां तानसेन सुनो शाह अकबर' ये शब्द आते हैं। इसी प्रकारके शब्द एक बिहागके ध्रुवपदमें भो आते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

स्थायी : रुमझुम भर आय एरी नैना तेहारे।
अन्तरा : बिथुरी-सी अलक श्याम घन-सी लागत
झपक झपक उघरत मेरे जान तारे
संचारी : अरुन बरन नैना तेरे तामें लाल डोले
ता पर अम्बुज बार-बार डारे।
अभोग : कहे मियां तानसेन सुनो शाहा अकबर
उपमा कहां लो दीन बिन अंजन कजरारे।

अबुल फजल अकबरनामेंमें सूचना देता है कि अकबरके पास आकर तानसेनने अपनी कला और कृतियोंको सुसमृद्ध किया। यदि तानसेनका जन्म १५०६ ई० में हुआ, जैसा कुछ लोग मानते हैं तो पचास वर्षसे अधिक अवस्थाकी ये प्रौढ़ कृतियां मानी जा सकती हैं। इनकी रचना भी हर प्रकारसे प्रौढ़ और गम्भीरता लिये हुए है। इस बिहागके शृँगारकी तुलना एक बागेश्रीमें वर्णित शृंगारसे करें तो यह और भी स्पष्ट होगा। उसके पद हैं—लाल मनावे तू नहिं माने। माने रि मेरो कहो तू मान रहेगा। प्यारेके जियामें रूम रूम रम रहो तेरो हि।

दिर्गन-जल भरो ही रहेगो।
सुनो मियां तानसेन इतनीं समझ लो.
जो बन गये तोसों कौन कहेगो।

यह एक युवावस्थाकी रचना है और इसमें अकबरका भी नाम नहीं है।

अब हम तानसेनकी कुछ और ऐसी रचनाओंका निरीक्षण करेंगे, जिनमें अकबरका नाम नहीं आता। एक देशकारकी चीज है, जो झपतालमें है।

स्थायी : देवि परसाद दीजे अपने जननको,
तार रस इह ज्योति सरसा मतदेवि।

अन्तरा : अरोहि अबरोहि औंकार घोंकार,
सप्तसूर तीन ग्राम पाये जुगत देवि।
संचारी : अंबिका भवकालिचंडिका कंकालि,
कीजे दया मोपे मोरी माय,
आभोग : ता सेन जर लागि विनती करत है,
देशकारी वणरगाऊं बुत्त देवि।

इसके आभोगमें तानसेन देवीसे 'जर' अर्थात् धनके लिये प्रार्थना कर रहा है। इससे स्पष्ट है कि यह तानसेनकी प्रारम्भिक रचना है, जब वह धन संकटमें रहा होगा। आईने-अकबरीसे पता लगता है कि अकबरने तानसेनको प्रचुर धन देकर सन्तुष्ट कर दिया था। पहले तो सम्भव है कि पन्नाके राजा रामचन्द्रके नाम हो उसका धन संकट मिट गया होगा। अकबरके दरबारमें आनेके बाद तो उसे ऐसा प्रार्थनाकी आवश्यकता कदापि नहीं हो सकती थी।

अस्तु, आप देख चुके कि इस देशकालमें देवी, अम्बिका, चंडिका आदि अनेक नामोंसे आदि शक्ति भगवतीकी स्तुति की गयी है। इसी सिलसिलेमें एक और ध्रुवपद प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भी भगवतीकी ही स्तुति है, यह जय जयवन्तीका ध्रुवपद है। इसके शब्द हैं :

स्थायी : जय मातु रानी, तुतान, मानी,
विद्यासरसती, बैकुण्ठकी निसानी।
अन्तरा : तूहि गुरन तूहि प्रगट तूहि जल-थलमें,
सकल श्रेष्ठ मानि तू आदि भवानी
संचारी : तूहि सूर परमसूर तूहि देवि आदि देवि,
तूहि नाम रूप सकल गुननकी खानि।
आभोग : तानसेनकी माई कहा कहूं प्रभुताई,
जगतजाहिर कर दीनि तैंने मेरी बानी।

इसके आभोगमें तानसेन अपनी इष्ट देवीके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहा है। 'तानसेनकी माई कहा कहूं प्रभुताई, जगतजाहिरकर दीनि तैंने मेरी बानी।' अर्थात् इस रचनाके समय तानसेनका यश फैल चुका है। सम्भवतः यह उसी कीर्तिकी सूचना है, जो अकबरके कानोंमें टकराई और जिसने उसे बाध्य किया कि तानसेनको वह अपने पास बुलाये। जब कि देशकारकी चीज तानसेनकी शिक्षा और स्वर साधनके रूपमें पहली मंजिल तय होनेकी सूचना देती है, यह जय-जयवन्तीका ध्रुवपद उसकी दूसरी मंजिल, याने उसकी प्रसिद्धि और यश फैलनेका द्योतक है, और ये दोनों तानसेनकी तन्त्रोक्त शक्ति उपासनाको दृढ़ रूपसे प्रमाणित करते हैं।

अभी मैं आपको तानसेनकी वैष्णव और शैव उपासनाका भी कुछ परिचय दूंगा और अन्तमें उसकी अकबरकालीन नूतन उपासनाका। तान्त्रिकोंके कौल संप्रदायके बारेमें एक श्लोक प्रचलित है : 'अन्तः शैवा बहिः शाक्ताः सभा मध्ये च वैष्णवाः। नाना रूप धराः कौला विचरन्ति मही तले।' तानसेन समयानुकूल इससे भी आगे बढ़ा हुआ था, उसे 'सभा मध्ये' मुस्लिम-बननेमें भी कोई आपत्ति न थी। मैं तानसेनको उस उच्चकोटिका मानव माननेके लिये बाध्य हूं, जो धर्मका बाहरी नाम और रूपोंसे रंचकमात्र भी बन्धन न रखते हुए निरन्तर रसोल्लासमें मग्न रहते हैं।

अब तानसेनकी शिव भक्तिका एक नमूना देखिये। एक पूर्वीकी अपूर्व रचना सुनिये, जो सूलतालमें निबद्ध है और जिसका सम वैचित्र्य एवं चमत्कारसे आता है।

स्थायी : कंकनाल लोचन त्रय पंच वदन,
दशभुज भूषित भूजन शिव जटा मुकुट धर
अन्तरा : नील कण्ठ शोभित रुण्डमाल,
त्रिभुवन त्रिपुरासुर मरदन गौरी सुखकर
संचारी : व्याघ्राम्बर अम्बर भस्म भूषन,
कटि भुजंग फन पवन
आभोग : तानसेनके प्रभु हो प्रवीन भव व्रज,
मुक्ति मुक्ति करके नित दंची सब कर

पूर्वीकी गणना जनाब अबुल फजलने आईनेअकबरीमें देशकारकी ही तरह स्वतन्त्र कलात्मक शैलीके रूपमें की है। इसमें अकबरका नाम तो नहीं है, पर यह एक अत्यन्त सुगठित गमकोंसे पूर्ण प्रौढ़ रचना मालूम पड़ती है। तानसेनकी अन्तरात्मामें शिवकी कल्पनाने जिस बृहत् तांडवका उल्लास प्रस्फुरित किया; उसीका यह एक अद्भुत नादमय अथवा चिन्मय प्रतिबिम्ब है।

अब एक उदाहरण तानसेनकी वैष्णव उपासनाका देखिये, जिसकी दीक्षा उसे हरिदास स्वामीसे ही मिलना स्वाभाविक था। यह एक केदारका ध्रुवपद है, जो सूलतालमें निबद्ध है।

स्थायी : देखत तन दरासन देखत तन मन आनन्द भये
बिलास बिरह बिथा भारी पुन दरासन।

अन्तरा : आये नन्दघर अधर सुधारे,
प्रेम बूंद घन लगी नरासन।

संचारी : रोम रोम सुख उपजे क्रम-क्रम,
ज्यों-ज्यों लागी पियाके पग परसन।

आभोग : तानसेनके प्रभु तुम बहुनायक,
सब सौतन मिलि लागी तरासन।

इसमें रासेश्वर कृष्णकी प्रेम लीलाका वर्णन है। इसकी रचना या तो अकबरके दरबारमें आनेके पहिले हुई होगी अथवा बादमें जब तानसेन आगरासे व्रजभूमि जाया करता था, वहांके भक्त रसिकोंको सुनानेके लिये की होगी।

जब तानसेन अकबरके दरबारमें आया धीरे-धीरे एक नये वातावरणने उसपर सिक्का जमा लिया। एक वृन्दावनी सारंगके ध्रुवपदपर विचार कीजिये। यह भातखण्डे जीकी क्रमिक पुस्तकमें प्रकाशित है।

तुम रब तुम साहब तुम ही करतार
घट घट पूरन जल-थल भर भार।
तुम ही रहीम तुम ही करीम गावत
गुनी गंध्रब सुर-नर सुरतार।
तुम ही पूरन ब्रह्म तुम ही अचल
तुम ही जगत गुरु तुम ही सरदार।
कहे मियां तानसेन तुम ही आप
तुम ही करत सकल जगको भव पार।

इसमें रब, करतार, करीम, रहीम, पूरन ब्रह्म, आप और सरदार इत्यादि शब्द साथ आ रहे हैं। इनके आधारपर हम कह सकते हैं कि हिन्दू, मुस्लिम, वेदान्ती, सूफी और राज-दरबारी संस्कृतियोंके समन्वयकी उदार और नयी छाप तानसेनकी उपासनामें स्पष्ट परिलक्षित हो रही हैं। यह ध्रुवपद उसने अकबरके दरबारमें कुछ वर्ष रहनेके बाद बनाया होगा, ऐसा निष्कर्ष निकालनेमें विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

दूसरा ध्रुवपद गुर्जरी टोडीका है। यह राजा नवाब अलीकी कृपासे मुझे प्राप्त हुआ था और उनकी मुआरिफुग भातमें प्रकाशित हो चुका है, जो इस प्रकार है—

तेरो-बल प्रताप ऐसो जैसो उडुगनमें भानु है तू रब समान।
अली बली महाबली प्रगट प्रबल रब निशान।
वायू जल आकाश परवत अग्न भूम सबमें तेरी भूप।
सब दीप नवखण्डमें तेरो बखान।
सब दीप सब भूप सकल सुजन जन अनूप तेरी सरनागत कर प्रनाम तज गुमान।
तानसेन मत अजान तू है अन मेरबान।
जल थलमें निशान मुनिजन करत गान।

यद्यपि इसमें भी अकबरका नाम नहीं है, फिर भी यह एक ऐसे ईश्वरकी स्तुति है, जिसपर किसी महान चक्रवर्ती सम्राटके गुणोंका आरोप किया गया हो। इसमें एकके अतुल प्रभुत्व और चरम समृद्धिकी छाया प्रतिबिम्बित हो रही है। कुछ ऐसी ही पिछले ध्रुवपदमें भी; क्योंकि इनमें अकबर और ईश्वरके अभेदकी-सी व्यंजना है। मुझे तो इन दोनोंकी रचना उस समयकी प्रतीत होती है, जब अकबरका धर्म सम्बन्धी फितूर हदसे बाहर हो गया था। वह दीन इलाहीका नया मसीहा बनने जा रहा था। इसकी कड़ी आलोचना इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथने की है। सन् १५७८ और १५८३ ईसवीके मध्य अकबरके साम्राज्यकी सीमा और धार्मिक नीतिका विकास, दोनों महान उत्कर्षको प्राप्त हो चुके थे। यही काल हम इन ध्रुवपदोंकी रचनाका निर्धारित कर सकते हैं। ये तानसेनकी अन्तिम कृतियोंके प्रतीकरूप ग्रहण किये जा सकते हैं।

तानसेनके ध्रुवपदोंकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें अवसर कुछ अड़चनें अवश्य उठती हैं; जैसे एक श्रीरागका ध्रुवपद है जो 'वंशीधर पिनाकधर' इन शब्दोंसे शुरू होता है। इसका एक पाठ भातखण्डे जीकी क्रमिक पुस्तकमें मिलता है। उसमें यह चौतालमें है, किन्तु आभोगमें बैजू बावरेका नाम है। दूसरा पाठ स्वर्गीय हरि नारायण मुखर्जीकी ध्रुवपद स्वरलिपिमें उपलब्ध है। उसमें यह धीमे तितालेमें है और आभोगमें तानसेनका नाम है। इसी प्रकार एक मेघमल्लारका ध्रुवपद है, जो 'प्रबल दल साजे' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होता है। इसके एक पाठमें हरनाथका दूसरेमें तानसेनका नाम मिलता है। प्रश्न खड़ा हो जाता है, इनका मूल वाग्गेयकार कौन है? शायद इसका निर्णय संगीत रागकल्पद्रुम तथा अन्यान्य संग्रहों और अधिकाधिक कलावन्तोंकी परम्पराओंमें उपलब्ध इनके पाठकोंके तुलनात्मक अध्ययनसे हो सके। यहां सिर्फ इतना कहना है कि संगीतके विद्वान तानसेनकी जीवन कला, साधना और कृतियोंके भिन्न-भिन्न पहलुओंपर जब प्रकाश डालेंगे और अपने हर सुझावके लिये मौलिक आधार अथवा

ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करेंगे, तभी उनके सम्मिलित प्रयत्नसे तानसेनके जीवन और कलाका क्रम बद्ध इतिहास लिखा जा सकता है। न मालूम कहांसे कौन सार युक्त सूचना मिल जाये। मेरा अनुरोध है कि इसके लिये हम सदा प्रयत्नशील रहें; क्योंकि तानसेन सामान्यतः भारतीय संस्कृतिकी और विशेषतः भारतीय संगीतकी ग्रहणात्मक एवं समन्वयात्मक शक्तिका एक अद्भुत प्रतिनिधि माना जा चुका है।

भारतीय-विद्याविद् : अलेक्षी बारान्निकोव

वी० वीरोव्ये—देस्यातोवस्की

सोवियत संघमें भारत सम्बन्धी अध्ययनकार्य प्रसिद्ध रूसी भारतीय विद्याविद् लेबेदेव, मीनादेव, ओल्डेन बुर्ग और इचेरावत्स्कीके कामको आगे बढ़ानेवाले अकादमिशियन अलेक्षी बारान्निकोवके नामसे सम्बद्ध है। बारान्निकोवका जन्म एक बढ़ई परिवारमें १८९० में हुआ था। उन्होंने बड़ी कठिनाईके साथ किसी तरह शिक्षा प्राप्त की, क्योंकि जारकालीन रूसमें यह सुविधा मजदूरवर्गोंकी पहुंचके प्रायः बाहर ही थी।

१९१४ में अलेक्षी बारान्निकोवने कीव विश्वविद्यालयसे स्नातकपद प्राप्त किया, जहां संस्कृत, अवेस्ताकी भाषा और जर्मन परिवारकी भाषाओं सम्बन्धी अनुसन्धानका निर्देशन प्रोफेसर एफ० कनाऊइयरने किया। विज्ञानमें उनकी महती प्रगतिके कारण उन्हें प्राध्यापक पदकी सम्भावनाओं सहित फेलो पद प्राप्त हुआ। १९१६ में उन्हें अपनी प्राचीन भारतीय तथा प्राचीन फारसी निरुक्तिका ज्ञान बढ़ानेके उद्देश्यसे पेत्रोग्राद विश्वविद्यालय भेजा गया। अगले वर्ष वे समारा विश्वविद्यालयमें डोसेंट नियुक्त किये गये, जहां १९१९ में उन्हें संस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञानका प्राध्यापक नियुक्त किया गया।

बारान्निकोवके वैज्ञानिक तथा अध्यापन शास्त्रीय कार्यका बुनियादी झुकाव इन वर्षोंके अन्दर ही निश्चित रूप ले चुका था। उन्होंने आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा साहित्यके अध्ययनके प्रति अपने आपको समर्पित कर देनेका दृढ़ संकल्प किया। इससे पहले रूसी वैज्ञानिक मुख्यतः प्राचीन तथा मध्ययुगीय भारत तथा उसकी भाषाओं (संस्कृत, पाली इत्यादि) के अध्ययनमें अपने आपको लगाते थे। उन्होंने किन्तु भारतकी आधुनिक भाषाओं तथा साहित्यका बहुत थोड़ा ज्ञान संचित किया था।

बारान्निकोवने नये और जाग्रत भारतकी, जो औपनिवेशिक शासनके विरुद्ध लड़ रहा था, भाषाओं तथा साहित्यका गहरा अध्ययन जरूरी समझा। उन्हें यह विश्वास भी था कि यह ज्ञानका बहुत विस्तृत क्षेत्र है तथा सोवियत संघ जैसे देशके पास इस क्षेत्रमें बहुत अधिक वैज्ञानिक और विशेषज्ञ होने चाहिये। जब १९२१ में वे लेनिनग्राद चले गये, तो वहां नयी भारतीय भाषाएं सिखाना आरम्भ किया तथा जीवित पूर्वी भाषाओंकी लेनिनग्राद संस्थामें भारतीय विद्या-विभागके प्रधान अध्यापक नियुक्त किये गये। १९२२ में उन्हें लेनिनग्राद विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक पद प्राप्त हुआ।

रूसी उच्चतर स्कूलोंके कार्यक्रममें नयी भारतीय भाषाओंकी शिक्षा सम्मिलित किये जानेसे बारान्निकोवके सामने इन भाषाओंकी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनेकी आवश्यकता उपस्थित हुई। उन्होंने (१९२६ में) उर्दू व्याकरणकी संक्षिप्त रूपरेखा, (१९२७-३० में) उर्दू-रूसी-इंग्लिश शब्दकोश सहित, दो भागोंमें आधुनिक उर्दू गद्यके नमूने, (१९३४ में) मराठी भाषाकी पाठ्यपुस्तक, (१९३४ में) व्याकरणकी रूपरेखा सहित हिन्दी और उर्दूकी पाठ्य-पुस्तक, और (१९३५ में) हिन्दी तथा उर्दू प्रेसपर आधारित पाठ्य-पुस्तक प्रकाशित की। उन्होंने बंगला भाषाकी पाठ्य पुस्तक भी तैयार की है, जो १९५६ में छपकर प्रकाशित होगी।

बारान्निकोवका कार्यालय शैक्षणिक कार्य तक सीमित नहीं रहा। बहुमुखी प्रतिभावाले वैज्ञानिक, दैदीप्यमान भाषाविद्, इतिहासज्ञ तथा साहित्यके विद्वान् होनेके कारण उन्होंने नयी भारतीय भाषाओं, साथ ही भारतकी मध्ययुगी और प्राचीन बोलियों, भारतीय जनगणके साहित्य, इतिहास, विज्ञानों तथा धर्म-प्रणालियोंके इतिहाससे सम्बद्ध लगभग २००

वैज्ञानिक कृतियां प्रकाशित कीं। उनका 'हिन्दुस्तानीमें संयुक्त क्रियाएं तथा रूसी भाषामें उनके पर्याय' इंग्लिशमें अनूदित किया गया तथा हिन्दी भाषाकी संयुक्त क्रियाओंकी समस्या शीर्षकसे बनारसमें कोशोत्सव स्मारक संग्रहमें प्रकाशित किया गया। बारान्निकोवने अपनी अनेक कृतियोंमें दिखलाया है कि आधुनिक हिन्दी-आर्य भाषाएं शोधकको भाषा सम्बन्धी बहुत ही मूल्यवान उपादान प्रदान करती हैं, वैसा ही मूल्यवान उपादान जैसा उसके प्राचीन रूपों, वेदकी भाषा और संस्कृतने किया था।

रूसी संघके युरोपीय भाग तथा यूक्रेनके जिप्सियोंके ऐतिहासिक तथा नृवंशगत मूलकी ओर तथा सर्वप्रथम उनकी भाषाकी ओर जो भारतसे बाहर नयी भारतीय भाषाओंमें एक है, उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

नयी भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित साहित्यके अध्ययनकी ओर भी उन्होंने बहुत ध्यान दिया। (१९३७ में) सुप्रसिद्ध भारतीय लेखक लल्लू लाल जीके कृष्णलीला सम्बन्धी 'प्रेम सागर' तथा (१९४८ में) तुलसीदासके 'रामायण'के प्रथम रूसी अनुवादका श्रेय भी उन्होंने प्राप्त किया।

दोनों अनुवाद लम्बे प्राक्कथनों सहित प्रकाशित हुए हैं, जिनमें हिन्दी साहित्यके इतिहासकी झलक देते हुए बताया गया है कि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इन अनुवादित स्मरणीय ग्रन्थोंका क्या स्थान है। 'रामायण'के रूसी अनुवादकी बारान्निकोव लिखित लम्बी भूमिका हिन्दीमें अनुवादित हुई है और हाल ही भारतमें प्रकाशित की गयी है। उनके अनुवादों तथा आलोचनात्मक कृतियोंसे पता चलता है कि हिन्दी सहित्य, भारतीय भाषाओंमें रचे साहित्यकी असाधारण वस्तु है, जो सभी देशोंमें अच्छी तरह अध्ययनके उपयुक्त है। इन कृतियों तथा रूसी-भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्धोंके विषयमें उनकी विशेष कृतियोंका भारत-सोवियत संघके सांस्कृतिक मिलनमें बड़ा महत्व है।

भारतीय रूसी-भाषाओंके कोश तैयार करनेके लिये उनके सामने सचमुच बहुत बड़ा काम था। अपने छात्रोंके साथ मिलकर उन्होंने एक उर्दू-रूसी कोश तैयार किया, जो १९५१ में प्रकाशित हुआ तथा एक हिन्दी-रूसी कोश तैयार किया जो उनकी मृत्युके बाद १९५३ में प्रकाशित हुआ। दूसरा जिसमें लगभग ३५,००० शब्द तथा मुहावरे हैं, सभी मौजूदा हिन्दी-इंग्लिश तथा दूसरे द्विभाषीय कोशोंसे विशेषता रखता है। इसमें हिन्दीके आधुनिकतम शब्द हैं। अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें बारान्निकोवने सोवियत संघकी विज्ञान अकादमीके प्राच्य-अनुसन्धान संस्थानका निर्देशन किया और बादमें सोवियत संघके विभिन्न उच्चतर स्कूलोंमें भारतीय भाषाओंके विभागोंके मुख्य अध्यापक रहे। उन्होंने प्राचीन तथा आधुनिक भारतीय साहित्यपर व्याख्यान दिये, भारतीय निरुक्ति तथा आधुनिक आर्य भाषाओंके तुलनात्मक व्याकरणपर प्रारम्भिक व्याख्यान किये, और छात्रोंके साथ वेद-वेदांग, हिन्दीकी मध्ययुगीय साहित्य-रचनाओं तथा प्रेमचन्दपर विशेष ध्यान देते हुए आधुनिक लेखकोंके साहित्यका अध्ययन किया। उनके बहुमुखी कार्यकलाप भारत तथा सोवियत संघके जनगणके सांस्कृतिक मिलनको बढ़ानेमें उन्मुख हुए। सोवियत संघकी सरकार तथा वैज्ञानिक जगत्ने इसका बहुत ही उंचा मूल्य आंका। वे सोवियत संघकी विज्ञान अकादमीके सदस्य चुने गये और १९४५ में आपको सोवियत संघकी सरकारका सर्वोच्च पुरस्कार 'आर्डर आव लेनिन' मिला।

१९५२ में इस वैज्ञानिकके निधनने भारतीय भाषा-विज्ञान सम्बन्धी उनके नये अनुसन्धानमें विघ्न डाल दिया, पर उनके अनगिनत छात्र अब उसे पूरा कर रहे हैं।

काव्यके कलापक्ष और भावपक्ष

ब्रजकिशोर सिन्हा

काव्यको समझने-बूझनेके प्रयास उसी दिनसे होते आ रहे हैं, जिस दिनसे काव्य भारतीय साहित्यमें प्रतिष्ठित हुआ था। इसके प्रमुख तत्वों तथा प्रधान उपकरणोंपर विद्वान आज तक एक मत नहीं हो सके हैं और इसीलिये जब हम काव्यके इतिहासका अवलोकन करते हैं तो हमें काव्यकी परिभाषाओंके रूपमें, उसकी आत्माके विषयमें तथा उसके प्रमुख तत्व एवं उपकरणोंके सम्बन्धमें अनेकानेक विचार मिलते हैं। जो भी हो, काव्यके उपकरणोंके सम्बन्धमें इतनी बात माननेमें किसीको भी हिचक नहीं होगी कि अनुभूति एवं अभिव्यक्तिके सम्मिलित स्वरूपका नाम ही काव्य है। यहां एक बात ध्यान देनेकी है और वह यह कि अनुभूति तथा अभिव्यक्ति वस्तुतः अविभाज्य हैं—दोनोंमें अभेद सम्बन्ध है। अनुभूतियां जब दूसरे ही क्षण भावका रूप ग्रहण करने लगती हैं तो वे बिना शब्द या भाषाके माध्यम ऐसा नहीं कर सकतीं। कहनेका अभिप्राय यह कि बिना भाषाके भाव नहीं रह सकते। भाषा स्वयं ही भावकी मूर्त्ति है। भावोंकी साधना भाषाकी साधनाके साथ साथ चल सकती है। स्पष्ट ही, जब अनुभूतियां अपना स्पष्ट रूप भावोंके रूपमें बनाती हुई होती हैं तो भाषा अनायास ही आ जाती है और इसीलिये ऐसा भी कहा जाता है कि भाषा भावोंकी अनुगामिनी होती है। विचारपूर्वक देखनेपर सचमुच इस कथनकी स्वाभाविकता परिपुष्ट हो जाती है। कहना नहीं होगा कि जब हम अपनी अनुभूतियोंको अभिव्यक्त करते होते हैं, तब हम अपनी भाषाको कुछ इस प्रकार सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित बनाना चाहते हैं कि हमारी अनुभूतियां अपनी पूर्णतामें अभिव्यक्त हो जायें। तात्पर्य यह कि एक ओर तो हम अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओंकी अभिव्यंजना करते हैं और दूसरी ओर अपने सौन्दर्य ज्ञानके सहारे उन्हें सुन्दरतम बनाते तथा उनमें एक अद्भुत आकर्षण का आविर्भाव करते हैं। इन्हीं दो मूल तत्वोंके आधारपर काव्यके दो पक्ष हो जाते हैं, जिन्हें हम भावपक्ष और कलापक्ष या अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्तिपक्ष कहते हैं। यद्यपि साहित्यके इन दोनों पक्षोंमें अभेद, अविच्छिन्न तथा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनोंके समुचित संयोग और सामंजस्यसे ही काव्यको स्थायित्व मिलता है तथा उसका शुद्ध एवं सच्चा स्वरूप उपस्थित होता है; तथापि साधारण विवेचनके लिये, शास्त्रीय दृष्टिसे आलोचनाकी सुविधाके निमित्त ये पक्ष अलग-अलग माने जा सकते हैं। इतना ही नहीं, इनपर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया जा सकता है।

कहा जाता है कि काव्य जीवनकी सम्पूर्णताकी एक भावात्मक दृष्टि है। इससे यह अर्थ कदापि नहीं ग्रहण किया जा सकता कि काव्यमें बौद्धिकता और विवेकका सर्वथा अभाव होता है—नहीं, ऐसा तो कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता। भावपक्षकी दृष्टिसे किसी भाषाका काव्य उस भाषा-भाषी जातिके हृदयकी वाणी है, वह उसके समष्टिगत जीवनकी रागात्मक अनुभूतियोंकी चित्रशाला है। काव्य वैयक्तिक कृति है, किन्तु सामाजिक वस्तु है। वस्तुतः कवि संयमका संयम है, इसीलिये वह स्वतन्त्र भी है। बीते हुए कल और आगे आनेवाले कलकी संधिरेखापर रात्रिके शान्त वातावरणमें जब सामाजिक जीवन अतीत और भविष्यके साथ वर्तमानका सामंजस्य बैठाता हुआ है, तब उसकी वाणी स्वाभावतः काव्यके रूपमें फूट पड़ती है। अभिप्राय यह कि

काव्य अनुभूति प्रधान जीवनकी भाव प्रधान वाणी है और रसके अभावमें वह निष्प्राण होती है। इस प्रकार काव्यमें भावपक्षकी महत्ताको कोई भी विचारशील व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता है। भावोंकी दृष्टिसे यदि हम मानव स्वभावका विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि मनुष्यकी मनोवृत्तियां जटिल तथा दुरूह हुआ करती हैं, उसके भाव, विचार तथा उसकी कल्पनाएं भी बड़ी विचित्र तथा अनोखी हुआ करती हैं। मनुष्यकी विचारगत इन्हीं विभिन्नताओंके कारण काव्यमें भी अनेकरूपता दिखायी देती है, पर यहां यह भी ज्ञातव्य है कि मनुष्यकी प्रवृत्तियोंके इन अंग-उपांगोंके होते हुए भी मानव-स्वभावके मूलमें भावात्मक साम्य होता है और यही कारण है कि काव्यमें भी अनेक-रूपताके होते हुए भी भावनानुरूप समता दिखायी देती है और इसी समतापर लक्ष्य रखते हुए काव्यमें भावपक्षका विवेचन किया जाता है।

ऊपर कही गयी बातें इस ओर स्पष्ट संकेत देती हैं कि भाव तो प्रत्येक कविताके मूलमें अवश्य ही रहते हैं। अब उन भावोंको भाषाका स्वरूप देना, भाषाको उचित रीतियोंके साथ संघटित करना, उसे सजाना एवं अलंकारोंसे सुशोभित करना, उसे गुणवती बनाना, दोषोंको उससे दूर रखना—सारांश यह कि भाषाको लक्षणा, व्यंजना आदि शक्तियोंको उद्बुद्ध और स्पष्ट करके उन भावोंको रसमय बना देना—यह काव्यके कलापक्षका काम है। यह काव्यका बहिरंग होता है। यद्यपि भावोंकी प्रधानता सबको मान्य है, किन्तु भाषाके बिना तो भावोंका अस्तित्व ही नहीं रहता और भाषाको परिपाटीके अनुसार सज्जित करनेसे ही कलाका उद्गम होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि कलात्मक रीतिसे सजी हुई भाषा, जिसमें भावोंका व्यंजन होता है, काव्य है। काव्यमें कलापक्षकी दृष्टिसे शब्द सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। वे कविता या काव्यके स्वरूपके ऐसे चरम अवयव हैं, जिनके माध्यमसे हम संश्लिष्ट रूपमें भावोंको ग्रहणकर पाते हैं। शब्द हमारे समस्त ज्ञानके प्रकाशक हैं, पर वे अपने आपमें अकेले ध्वन्यात्मक नहीं होते। जिस तरह उपवनमें असंख्य डालियोंपर खिले हुए असंख्य फूल मालाका सौन्दर्य नहीं दे पाते, वे एक दूसरेसे विच्छिन्न और विकीर्ण होते हैं, ठीक उसी तरह शब्द मानव-समाजमें विकीर्ण होते हैं। किन्तु जब किसी व्यक्तिके हृदयमें किसी विशेष सौन्दर्यानुभूतिकी लहर उठती है, सौन्दर्यानुभूति निस्सन्देह तरंगात्मक ही होती है, जिसकी तरंगोंको मूर्त्त रूप देनेके लिये वह व्यक्ति अपने मनमें छिपे हुए भाषा-सागरसे उस शब्द-समूहको तरंगान्वित करके अपनी रचनामें उल्लिखित करता है, जिसके माध्यमसे उसकी सौन्दर्यानुभूति प्राय सर्वांशतः अभिव्यक्त हो सकती है। व्यक्तिकी ऐसी रचना काव्य कहलाती है और इस तरह भावों और शब्दोंका एक तान उत्क्षेपन प्रस्तुत करनेवाला व्यक्ति ही कवि होता है। सिद्ध है कि काव्यसे हम शब्दोंको नहीं निकाल सकते। इसी तरह कलापक्षकी दृष्टिसे छन्द आदि भी काव्यके अनिवार्य तत्व हैं, जहां तक उनका सम्बन्ध लयात्मकतासे है।

इन सभी दृष्टियोंसे देखनेपर ऐसा लगता है कि भावपक्ष और कलापक्ष काव्यके अनिवार्य तत्वोंपर आधारित हैं और वस्तुतः एक पक्ष दूसरेकी सहायताके बिना अर्थहीन तथा महत्वहीन है। दोनोंमें अभेद सम्बन्ध है—दोनों एक दूसरेके सहायक और उत्कर्ष-वर्द्धक हैं।

—पवन-निवास बेगूसराय (मुंगेर)
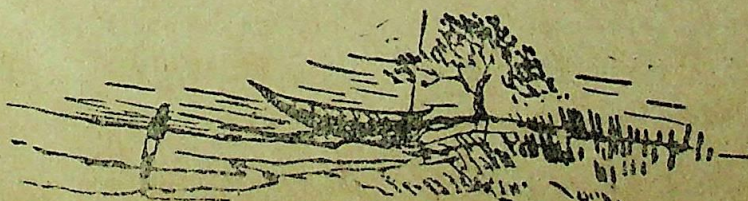
चप्पल चोरी

महादेव शाहा

शरत्‌चन्द्र तब कलकत्तेमें रहते थे। यतीनदास रोड (बालो गंज, कलकत्ता) में शिल्पी सतीश सिंहके मकानपर उन दिनों हर इतवारको शामका रसचक्रकी नियमित गोष्ठी हुआ करती थी।

शरत्‌चन्द्रका मकान पास ही था, वे अकसर इस गोष्ठीमें जाते थे और तरह-तरहके लतीफे सुनाया करते थे।

उस दिन रसचक्रकी विशेष गोष्ठी थी। गाने-बजाने और खाने-पीनेको काफी आदमी न्योते गये थे। अतिथियोंका आना शुरू हो गया था। शरत्‌चन्द्र पहले ही आ गये थे। इसी समय चक्रके सदस्य नूटविहारी मुखोपाध्याय आ पहुंचे तथा जूते उतारते हुए बोले रास्तेके किनारे नीचेवाले तल्लेके कमरेमें सभा होगी। बरामदेमें इतने जूतोंका पड़ा रहना बिलकुल ठीक न होगा। रास्तेसे न जाने कितने तरहके आदमी जा-आ रहे हैं। इधरसे किसीने एक जोड़ा खिसका लिया तो? यहां किसी नौकरको बैठा रखना अच्छा होता।

शरत्‌चन्द्रने कहा—ठीक कहा है, मुरारीने। वहां फौरन एक नौकरको बैठा रखनेका इन्तजाम होना चाहिये।

नूटविहारीने चिल्लाकर कहा—शरत् दादा, आप मुझे कह रहे हैं। कितनी बार कहा कि मेरा नाम नूटविहारी है, मुरारी नहीं; फिर भी आप मुरारी कहते हैं?

—अच्छा, मुरारी, तू क्या मुरारी कहनेसे सचमुच ही नाराज होता है?

—नाराज न होऊं? मुरारी न होनेपर भी मुरारी सुनना किसे अच्छा लगेगा? क्या जानूं, आप जैसे बड़े आदमीकी बात है, मेरे जैसोंके लिये समझना कठिन है। एक तो मेरी ऐसी सूरत है कि घरमें मुरारी नामका कोई नौकर-चाकर रहा होगा, मर गया है फिर भी भूल नहीं पा रहे हैं। शायद उसी नामका भूत अब भी आपके कंधेपर सवार है।

नहीं मुरारी! तुझे मैं छोटे भाईकी तरह प्यार करता हूं, तू इसे क्या समझेगा! कृष्णकी तरह तेरा पक्का रंग है, तिसपर गोलगोल चेहरा है, इसीलिये तो तुझे मुरारी कहकर पुकारता हूं। आ बैठ मेरे पास!

पास जाकर नूटविहारीने कहा—सच शरत् दादा या और कोई कारण है?

—नहीं रे, नहीं!

शरत्‌चन्द्र और नूटविहारीकी बातें सुनकर उपस्थित सभी लोग हँसने लगे।

नूटविहारीने सुझाव रखा—शरत् दादा, सभा शुरू होनेमें अभी देर है, तब तक मेरा कहना है कि आप एक कहानी सुनाइये।

कौन-सी कहानी सुनाऊं, बता?

जो आपकी तबीयत हो।

तू तो आज आते ही जूता चोरी जानेके डरसे घबरा उठा है। एक बार जूता खो जानेकी वजहसे मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया था।

तब मैं बाजे शिवपुरमें रहता था। एक दिन मनमोहन थियेटरमें सिनेमा देखने गया। मेरी ही किताबकी फिल्म दिखायी जा रही थी। सिनेमावाला आकर पकड़ ले गया।

'बाक्स'पर बिस्तर बिछाकर बैठनेका इन्तजाम किया गया था। पालथी मारकर मजेमें बैठा था। सिनेमा खतम होनेपर जब जानेके लिये उठा तो देखा कि मेरा एक जूता नहीं मिल रहा है। सिर्फ दो दिन पहले बड़े शौकसे सूंड़वाली तालतल्लाकी चप्पल खरीदी थी और उस दिन उसीको पहन कर गया था।

सिनेमावालोंने बहुतेरा ढूंढा लेकिन चप्पलका कहीं पता

नहीं चला। उन्होंने मुझसे कहा—चलिये, अभी एक नयी जोड़ी खरीदे देता हूं।

मैंने कहा—तुम लोग क्यों खरीदने जाओगे ? खरीदना होगा, तो मैं ही खरीद लूंगा।

उन्होंने कहा—चप्पल हमारे यहां खो गया है तो खरीदना हमारा ही कर्त्तव्य है।

मैंने कहा—चोरी किया है चोरने, तुम्हारा क्या कसूर ? छोड़ो, अब मैं चला। और हां, इस पल्लेको लेता जाऊं।

इस बातको सुनकर वे बोले—शरतदादा, इसे लेकर क्या करेंगे ? एक पल्ला आपके किस काममें आयेगा ?

मैंने कहा—तुम लोग नहीं समझते भाई। जिस चोरने एक पल्ला चुराया है, वह यहीं आस-पास कहीं है। एक पल्लेसे तो उसका काम नहीं चलेगा। वह आया तो था दोनों पल्लोंको लेने, जल्दबाजीमें नहीं ले सका और एक पल्लेको ही लेकर खिसक गया। सोचता होगा कि एक पल्ला जब मिल ही गया है तो दूसरा अपने आप ही आ जायेगा। बाबू एक पल्ला पहन कर न जायेंगे। मैं यह नहीं होने दूंगा। चोरको एक पल्लेसे ही सबक देना होगा। दूसरा पल्ला मैं साथ ले जाऊंगा। यहांसे सीधे शिवपुर जाऊंगा और रास्तेमें इसे गंगामें फेंकता जाऊंगा।

मेरी बात सुनकर सभी हँसे सही मगर मैं सचमुच उस पल्लेको साथ लेता आया और रास्तेमें गंगामें फेंकता गया।

चप्पल तो गंगामें गयी, अगले दिन क्या हुआ जानते हो ? सबेरे जरा देरसे उठकर बैठकमें हुक्का पी रहा था, इसी समय एक आदमीने आकर पूछा—क्या यह शरत् बाबूका मकान है ? मैंने कहा—हां, मेरा ही नाम शरत् है।

सुनते ही उसने नमस्कार करके एक चिट्ठी मेरे हाथमें दी। पढ़ देखा, पिछले रातके उस सिनेमावालेने लिखा है—

शरत् दादा, कल हमारे यहां आपका जूता चोरी जानेसे मन बड़ा उदास हो गया। सच कहनेमें क्या, इसीलिये कल रातको ठीकसे सो भी नहीं सका। आज सबेरे उठते ही सिनेमा हालमें अंगुल-अंगुल ढूंढ़कर देखा। जिस 'बाक्स'पर आप बैठे थे, उसे हटाकर देखा तो एक किनारे आपकी वह खोई हुई चप्पल पड़ी हुई थी। आपकी चप्पल कल मेरे यहां चोरी नहीं गयी—इस बातको सोचनेपर मुझे थोड़ी-सी सान्त्वना मिलती है। आशा है कल लौटते वक्त आप एक चप्पल सचमुच ही गंगामें फेंक नहीं गये होंगे। इसी भरोसे खोई हुई चप्पलका पल्ला पत्रवाहकके हाथ भेज रहा हूं।

मेरे चिट्ठी पढ़ लेनेके बाद उस आदमीने मेरे सामने उस विश्वासघाती चप्पलका एक पल्ला रख दिया। मेरी वह बड़ी शौकसे खरीदी चप्पल देखकर मन खिन्न हो गया। न जाने कितने शौकसे उसे खरीदा था। दूसरे पल्लेको तरंगमें आकर गंगामें फेंका न होता तो अच्छा होता। अब देखता हूं, चोरको सबक सिखानेमें मुझे ही सबक मिला।

उस आदमीसे बोला—यह तो अब किसी काममें नहीं आयेगी। एक पल्ला तो कल मैं गंगामें फेंक आया हूं। इसे लेकर क्या करूंगा ? तुम बल्कि लौटते समय इसे गंगामें फेंक देना।

उपन्यासके प्रकार

महेन्द्र भटनागर

उपन्यास साहित्यके विकसित होनेके साथ-साथ उसमें अनेक रचनागत एवं विषयगत प्रकारों तथा भेदोंका पाया जाना स्वाभाविक है। जब भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले उपन्यास भिन्न-भिन्न अथवा एक ही उपन्यासकार द्वारा रचे जाने लगे तब यह आवश्यक हो गया कि उनका वर्गीकरण किया जाये और उनके प्रकार भेदकी व्याख्या की जाये; एतदर्थ उपन्यास वाङ्मयको कई प्रकारोंमें बांटा गया है। यह विभाजन पूर्ण है; ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भविष्यमें औपन्यासिकोंकी वृद्धिके साथ-साथ इसमें परिवर्तन एवं परिर्धन सम्भाव्य है।

प्रश्न यह है कि इस वर्गीकरणका क्या आधार है? औपन्यासिक विभेदोंके दो आधार हैं: प्रथम तो उपन्यासके किसी विशेष तत्वकी प्रधानताका होना और दूसरा उद्दिष्ट विषयका विचार। इन दोनों प्रकारके उपन्यासोंके उप-भेद इस प्रकार किये जा सकते हैं:

(१) तत्वोंकी प्रधानताके आधारपर:
- (क) घटना-प्रधान
- (ख) चरित्र-प्रधान
- (ग) घटना-चरित्र-प्रधान

(२) उद्दिष्ट विषयके विचारके आधारपर:
- (क) ऐतिहासिक
- (ख) समस्यामूलक।

उपर्युक्त वर्गीकरणसे यह न समझना चाहिये कि उपन्यास के ये प्रकार एक दूसरेसे नितान्त स्वतन्त्र हैं। इस वर्गीकरणका मूल आधार किसी वशेष तत्व अथवा विशेष विषयकी प्रधानता ही है। वस्तुतः प्रत्येक उपन्यासमें सभी नहीं तो अधिकांश तत्वोंका समावेश होता ही है; किन्तु यह सब होते हुए भी उनकी अपनी पृथक-पृथक सत्ता होती है; उनका अपना-अपना पृथक संदेश होता है तथा उनके अपने-अपने उद्देश्य होते हैं। अतः यह वर्गीकरण औपन्यासिक वाङ्मयके अन्तर्गत एक आवश्यक वस्तु बन गया है।

शैलीके अनुसार भी उपन्यासोंका वर्गीकरण किया जाता है। उसके निम्नलिखित रूप हैं:

(१) कथाके रूपमें

(२) आत्मकथाके रूपमें

(३) चिट्ठी-पत्रीके रूपमें।

अधिकतर उपन्यास कथाके रूपमें ही लिखे जाते हैं। आत्मकथा और चिट्ठी-पत्रीके रूपमें लिखे जानेवाले उपन्यास अपना स्वतन्त्र रचनातन्त्र रखते हैं।

घटना-प्रधान उपन्यास औपन्यासिक विकासका प्रथम चरण है। प्रत्येक साहित्यके अरम्भिक कालमें घटना-प्रधान उपन्यासोंका बाहुल्य मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने इन घटना-वैचित्र्य-प्रधान उपन्यासोंके सम्बन्धमें लिखा है: 'घटना-वैचित्र्य-प्रधान अर्थात् केवल कुतूहलजनक, जैसे जासूसी और वैज्ञानिक आविष्कारोंका चमत्कार दिखानेवाले उपन्यासों में साहित्यका गुण अत्यन्त अल्प होता है। केवल इतना ही होता है कि ये आश्चर्य और कुतूहल जगाते हैं।'[१] इन उपन्यासोंमें आश्चर्यजनक घटनाओंका वर्णन मात्र रहता है। ऐसे उपन्यासोंका मुख्य उद्देश्य मनुष्यका मनोरंजन करना एवं उसकी कुतूहल-वृत्तिको उत्तेजित करना होता है। उपन्यासकार अद्भुत एवं असाधारण व्यापारोंका समावेश करके कथाको इतना आकर्षक तथा रोचक बना देता है कि पाठकके कौतूहल की तीव्रता बढ़ती जाती है और वह उसके पढ़नेमें लीन हो जाता है। ऐसे उपन्यासोंमें घटनाओंका घटाटोप-सा दृष्टि-

---

१. हिन्दी साहित्यका इतिहास। पृष्ठ ५४१.

गोचर होता है। चमत्कारपूर्ण घटनाएं असम्बद्ध-सी रहती हैं। उनका कोई क्रम नहीं होता। पूरे उपन्यासमें केवल एक विस्मयका वातावरण व्याप्त रहता है। पात्र असाधारण व्यापार करते हैं। उनके लिये कोई वस्तु असम्भव नहीं होती। सभी घटनाएं कल्पित होती हैं।

यह सब होते हुए भी इन उपन्यासोंका एक मनोवैज्ञानिक पहलू है और वह यह कि मनुष्यकी वृत्तियोंका इनमें रमना। पाठक सब कुछ भूलकर ऐसे उपन्यासोंमें तल्लीन हो जाता है; क्योंकि वे उसकी कौतूहल जन्य क्षुधाको तृप्ति प्रदान करते हैं। ऐसे उपन्यासकी कथावस्तु तर्क बुद्धिपर आधारित नहीं होती। रोमांचकारी घटनाओंका वर्णन मात्र ही लेखक का प्रधान उद्देश्य होता है; जिससे वह अपने पाठकोंका मनोरंजन कर सके। जिस साहित्यका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना होता है, वह उच्च श्रेणीका कदापि नहीं कहला सकता। स्पष्ट है कि ऐसे उपन्यास विकसित बुद्धिके मनुष्य समुदायको रुचिकर नहीं हो सकते; दूसरे अब बढ़ते हुए जीवन-संघर्षके कारण ऐसे मनोरंजनार्थ उपन्यासोंको पढ़नेके लिये मनुष्यके पास पर्याप्त अवकाश भी नहीं बचा। आजका मनुष्य संघर्ष-शील तथा एक जाग्रत शक्ति है। वह केवल रोमांचकारी घटनाओंको स्वप्नकी भांति देखनेका अभ्यासी नहीं रहा, क्योंकि उसकी सामाजिकता बौद्धिकता एवं जीवनकी नाना समस्याओंने उसे यथार्थवादी बना दिया है। उसका अब काल्पनिक कथाओंपर विश्वास नहीं रहा। अतः प्रारम्भिक घटना प्रधान उपन्यासोंका दिनपर दिन ह्रास होता जा रहा है, जो मानव विकासके साथ-साथ एक अनिवार्य क्रम है।

दूसरे प्रकारके उपन्यास चरित्र-प्रधान होते हैं। जैसा कि नामसे स्पष्ट है, इन उपन्यासोंमें उपन्यासकारका प्रधान लक्ष्य पात्रोंका चरित्रांकन होता है। ऐसे उपन्यासोंकी सफलताका सारा श्रेय तथा उनके आकर्षणका केन्द्र चरित्र-चित्रण ही है। पात्रोंके जीवनकी समस्त गतिविधि, उनके आचार-विचार, क्रिया-कलाप, पारस्परिक व्यवहार आदिपर इतना ध्यान रखा जाता है कि उपन्यासके अन्य तत्व गौण हो जाते हैं या यों कहा जाये कि शेष तत्व चरित्र-चित्रणकी सहायताके निमित्त ही आते हैं। कथा तक विशृंखल हो जाती है। पाठक ऐसे उपन्यासोंको पढ़ते समय कथाके किसी निश्चित अन्तका अनुमान नहीं लगा सकता। उपन्यासकारके सम्मुख कोई पहलेसे ही गढ़ी हुई कथा नहीं रहती है। वह तो किसी पात्र विशेषके प्रकाशनके निमित्त ही लेखनी उठाता है और उसकी प्रतिभा तथा सृजनात्मक शक्ति उसी पात्रके चित्रणमें चारों ओर केन्द्रित रहती है। कथाका विकास पात्रोंकी गतिविधिके अनुसार ही होता है। घटनाएं अथवा परिस्थितियां पूर्व निर्मित नहीं होतीं, वरन स्वयं पात्र इन घटनाओंको बनाते हैं। परिस्थितियोंपर पात्र निर्भर नहीं रहते; उनका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है।

कुछ लोग चरित्र-प्रधान उपन्यासोंके पात्रोंको अपरिवर्तन-शील रखते हैं। उपन्यासके आदिमें वे जिन खूबियों और कमजोरियोंको लेकर आते हैं, उसी रूपमें अन्त तक दिखायी पड़ते हैं। उनके मतानुसार पात्रोंकी चरित्र सम्बन्धी स्थिरता आवश्यक है। यह आवश्यकता-विभिन्न पात्रोंकी रीति-नीति, रहन-सहन और चरित्रोंका यह अन्तर बतानेके निमित्त है। स्वयं पात्रको समझनेके लिये भी यह जरूरी है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव एक स्थलपर लिखते हैं: 'चरित्रोंमें भिन्नताका भाव अधिक से-अधिक प्रभावके साथ उत्पन्न करनेके लिये पात्रोंको गतिहीन बनाना ही पड़ता है।'[1] कुछ ऐसे उपन्यासोंको अच्छा नहीं समझते। उनके मतसे चरित्रमें विकास होना चाहिये। वे पात्रोंके, विशेषकर दुर्बल पात्रोंके, चरित्र परिवर्तनमें विश्वास रखते हैं।

तीसरे प्रकारके उपन्यास घटना-चरित्र-प्रधान होते हैं, जिनमें घटनाओं और चरित्रोंका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है। वस्तु और चरित्र-चित्रण एक दूसरेपर निर्भर रहते हैं। पात्रोंकी गतिविधि कथावस्तुका निर्माण करती है और कथावस्तुकी घटनाएं पात्रोंके क्रिया-कलापका।

इस प्रकारके उपन्यास घटना-प्रधान उपन्यासोंसे नितान्त भिन्न होते हैं। 'घटना-चरित्र-प्रधान' के नामकरणसे यह

---

१. हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३६।

नहीं समझना चाहिये कि इनमें घटना-प्रधान और चरित्र-प्रधान उपन्यासोंके बीचका रास्ता चुना जाता है। घटना-प्रधान उपन्यासोंकी कथा अस्वाभाविक, असाधारण, अवैज्ञानिक तथा अलौकिक होती है, जब कि घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यासोंमें ऐसी बातोंका कोई स्थान नहीं है। औपन्यासिक रचनातन्त्रके अन्तर्गत वस्तु और वस्तु-विन्यास तत्वके सम्बन्धमें जो लिख आये हैं, उनका ऐसे उपन्यासोंमें सावधानीसे पालन होना चाहिये। घटनाएं स्वाभाविक एवं परिस्थितिके अनुकूल घटनी अनिवार्य हैं।

घटना-प्रधान उपन्यासोंकी तरह, चरित्र-प्रधान उपन्यास और घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यासमें विरोध नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि जहां चरित्र-प्रधान उपन्यासोंमें पात्रोंके चरित्रांकनपर अधिक बल देनेके कारण एकरसता उत्पन्न हो जाती है, वहां घटना-चरित्र-प्रधान उपन्यासोंमें नाना घटनाओंके समावेशसे कथामें सरसता आ जाती है और पात्रोंके चरित्र भी निरखते हैं। इस प्रकारके उपन्यास भी उच्च कोटिके माने गये हैं। उन्हें नाटकीय उपन्यास भी कहा जाता है।

उपर्युक्त प्रकारोंका वर्गीकरण तत्वोंकी प्रधानताके आधार पर किया गया है। उद्दिष्ट विषयके विचारसे प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास किसी देशके इतिहाससे सम्बद्ध रहते हैं। देशकी प्राचीन संस्कृति व उसके गौरवका चित्रण ऐसे उपन्यासोंमें मिलता है। ऐतिहासिक उपन्यास अतीतको हमारे सम्मुख रखते हैं।.

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासोंमें सबसे बड़ा अन्तर उनके रचनातन्त्र और परिस्थितियोंके रखनेमें है। इतिहास देशमें घटित होनेवाली राजनीतिक घटनाओंका एक संकलन होता है ; जिसमें इतिहासकारकी उन घटनाओं पर टिप्पणियां भी रहती हैं। पर ऐतिहासिक उपन्यासमें इतिहासकी केवल सूखी घटनाओंका चित्रण नहीं होता ; उसमें जन-श्रुतियोंके आधारपर घटनाओंके बनने-बिगड़नेका मार्मिक चित्रण होता है। अनेक ऐसे प्रसंग, जो मानवीय होनेपर भी प्रमाण न मिलनेके कारण इतिहासकार छोड़ देता है ; ऐतिहासिक उपन्यासकारकी दृष्टिमें इतिहासकी प्रमाणिक घटनाओंसे कोई कम महत्व नहीं होता। ऐतिहासिक उपन्यासकारको विश्वासी बनना पड़ता है। कभी-कभी ऐतिहासिक पुरुषों-सा इतिहासकार अन्याय भी कर जाता है ; जिसका परिमार्जन उपन्यासकारकी उदार दृष्टिसे ही सम्भव होता है। अप्रसिद्ध पात्रोंका समावेश हमें इतिहासमें नहीं मिलेगा, पर वे अप्रसिद्ध पात्र किस प्रकार परिस्थितियोंके निर्माणमें योग देते हैं, उसका चित्रण हमें ऐसे उपन्यासोंमें ही मिलता है। अस्तु, अभिप्राय यह कि ऐतिहासिक उपन्यास कोई इतिहासकी प्रतिलिपि नहीं होता। उसका स्वरूप उससे कहीं मानवीय, उसकी दृष्टि उससे कहीं उदार एवं उसके परिणाम उससे कहीं अधिक संगत होते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकारको निम्नलिखित तत्वोंपर विशेष ध्यान रखना पड़ता है :—

(१) देश-काल ; और

(२) कल्पना।

देशकाल उपन्यास रचनाका एक मुख्य अंग है ; पर इसका महत्व ऐतिहासिक उपन्यासोंमें सबसे अधिक है। बिना इसकी पूर्णताके उपन्यास सफल ही नहीं होता, वरन् कभी-कभी तो हास्यास्पद तक बन जाता है। उसकी परखका प्रधान मापदंड देशकाल है। काल विरुद्ध बातोंके समावेशसे ऐसे उपन्यास किसी कामके नहीं रहते। दिल्लीका वर्णन करते समय समुद्रके किनारेका दृश्य उपस्थित करना या अर्जुनके हाथमें रायफल बताना ऐसी ही बातें हैं। बारीकसे बारीक बातका उसे ध्यान रखना पड़ता है ; अतः उसे उस कालकी सामाजिक, भौगोलिक, नैतिक, आर्थिक तथा मनोगत स्थितिका अच्छा अध्ययन अनिवार्य है। पुरातत्वका ज्ञाता ऐसे उपन्यासों में सफलता प्राप्त कर सकता है। उसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह जिस प्रदेशका चित्रणकर रहा है, उस प्रदेशका भ्रमण करे, वहांका पर्यवेक्षण करे, वहांकी जनतासे निकटका सम्पर्क स्थापित करके जातिगत और स्थानगत तत्वोंको एकत्र करे। ऐसा करनेसे उसके उपन्यासोंमें सजीवता आ

जाती है। मात्र इतिहासके पीछे पड़कर या कल्पनाके सहारे इतनी सजीवता पैदा नहीं की जा सकती। घुमक्कड़ उपन्यासकार ऐसे उपन्यासोंको बड़े, अच्छे ढंगसे प्रस्तुत करते हैं।

जहां तक कल्पनाका सम्बन्ध है, ऐतिहासिक उपन्यासकारकी कुछ सीमाएं हैं। उसे अपनी कल्पनाशक्तिका वहां तक ही उपयोग करना होगा, जहां तक ऐतिहासिक सत्यका निर्वाह होता रहे। ऐतिहासिक सत्यकी अवहेलना ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं कर सकता। यह उसके लिये एक बहुत बड़ा बंधन है। कल्पना और इतिहासका उसे सामंजस्य करना पड़ेगा। अन्य उपन्यास लेखकोंकी तरह ऐतिहासिक उपन्यासकार कथावस्तुके चुनावमें स्वतन्त्र नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यासोंके दो भेद किये गये हैं :—

(१) ख्यातवृत, जिसमें ऐतिहासिक वृत्तको ग्रहण किया जाता है। पुरातत्वके आधारपर विशुद्ध ऐतिहासिक कथाका समावेश इनमें होता है। ऐसे उपन्यासोंको ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यासके नामसे भी पुकारा जाता है और (२) मिश्र जिनमें ख्यातवृतका ग्रहण बहुत कम होता है।

'वर्षान्तके बादल'के कवि 'अंचल'

भुवनेश्वरी प्रताप श्रीवास्तव

'वर्षान्तके बादल' नामक काव्य संग्रहमें प्रो० रामेश्वर शुक्र 'अंचल'की नवीनतम रचनाएं संकलित हैं। मधूलिका, अपराजिता, करील, लाल चूनर आदि श्रेष्ठ काव्य संग्रहोंके यशस्वी रचयिताका आज परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। उनकी गणना अब हिन्दीके श्रेष्ठ कवियोंमें की जाती है और छायावादके विरुद्ध झण्डा उठानेवालोंमें उनका स्थान अग्रणी है।

अंचल जीने काव्यजगत्में उस समय प्रवेश किया जब छायावाद अपने चरमोत्कर्षपर था और प्रत्येक महाकवि, चाहे वह छायावादी हो या न हो, छायावादके स्वरमें स्वर मिला रहा था और मुक्त छन्द अथवा असंबद्धताको ही छायावादकी कसौटी मानकर अव्यक्त, असीम, सूक्ष्मके प्रति विरहकी लम्बी-लम्बी तानें भर रहा था। छायावाद विरोधी समालोचकोंका उग्रघोष शून्यमें विलीन हो गया था। ऐसे समय जब सूक्ष्मका ही बोलबाला हो, उसके विरुद्ध स्थूलके विद्रोहकी ध्वजाको उठाना निःसन्देह बड़े साहसका काम था। यद्यपि अंचल जीके प्रथम दो काव्य संग्रहोंके नाम—मधूलिका तथा अपराजिता—छायावादकी परंपरासे मुक्त नहीं हैं, किन्तु उनमें संगुफित कविताओंमें छायावादके अपार्थिव, वायवीय, अव्यक्त, सूक्ष्म और काल्पनिक प्रेमके स्थानपर पार्थिव, दैहिक और मांसल प्रेमकी स्थापना की गयी थी। परन्तु अंचल जीके काव्य में न तो रीतिकालीन कवियोंकी रचनाओंकी भांति सामंतवर्गके कानमें डालनेके लिये कामोदीपक शृंगारिकताकी पिचकारी थी और न ही स्वस्थ प्रेमसे पलायन करनेवाली प्रवृत्ति। भगवतीचरण वर्मा अथवा बच्चन जैसी निराशाजन्य प्रवृत्तियां भी उनके काव्यको स्पर्श न कर सकीं, क्योंकि वे समाज तथा राष्ट्रके प्रति एक जागरूक कलाकार हैं और उनका अपना जीवन-दर्शन है, जिसने उन्हें अस्वस्थ, हानिकर अतिवादके गह्वरमें गिरनेसे रोक लिया। उनके सम्बन्धमें प्रमुख छायावादी आलोचक पंडित नन्ददुलारे वाजपेयीने अपनी समीक्षा

पुस्तक, 'हिन्दी साहित्यकी बीसवीं शताब्दी'में पन्द्रह वर्षसे अधिक समय हुए लिखा था—'रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' नवीन हिन्दी काव्यका एक क्रान्तिदूत है। मैं उसे क्रान्तिका स्रष्टा भी कह सकता हूं, यदि स्रष्टा शब्दसे केवल सृजनकर्ताका आशय हो। किन्तु यदि उसका तात्पर्य क्रान्तिको अपनी नैसर्गिक सीमा तक पहुंचा देनेका हो, तो स्रष्टापद अभी उसके लिये अनुपयुक्त होगा। अंचल अभी मार्गमें है, बहुत कुछ उसकी भविष्यकी गतिपर अवलंबित है।'

विगत पन्द्रह वर्षोंके दीर्घकालने वाजपेयी जीके शब्दोंकी सार्थकताको सिद्ध कर दिया है। छायावादी युगके अस्त होनेके पूर्व ही प्रगतिवाद हिन्दी साहित्यके क्षितिजपर उदित हो चुका था और छायावादके महारथी पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा सुमित्रानन्दन पंत प्रगतिशील लेखकोंको नेतृत्व देनेके लिये आकुल थे। ऐसे अवसरपर अंचलने प्रगतिशील काव्यका नेतृत्व अपनाया 'करील' तथा 'लाल चूनर'में उनकी क्रान्तिकारी रचनाएं गुंफित हैं, जो देशप्रेम, मानव प्रेम तथा ओजसे ओतप्रोत हैं और शोषितों, पीड़ितोंको अन्याय-अत्याचारसे संघर्ष करनेके लिये उत्साह देती हैं।

'वर्षान्तके बादल'की अधिकांश कविताएं इस दृष्टिसे 'मधूलिका' और 'अपराजिता'की परम्परामें आती हैं। इन कविताओंमें कविने मिलन, वियोग और स्मृतिको ही अधिक व्यक्त किया है। उसकी प्रेयसी सर्वदा उसके गीतोंके साथ है। अनेक गीतोंमें प्रेयसीके विरह दुःखकी व्यंजना की गयी है। 'अंचल'के इन गीतोंमें भावुकताकी तीव्रता है और इसलिये उनमें रीतिवादी कवियोंकी अलंकार बोझिलता एवं रसहीनता नहीं आने पायी है। प्रेम तथा प्रेयसीके मध्य भी यह सचेत कवि अपने सामाजिक दायित्व तथा संघर्षको नहीं भूल सका। प्रथम कवितामें ही वह कहता है—

'गूंजता है कानमें उस अनकहे आशीसका स्वर,
जिन्दगीमें जो अभावों औ' दुखोंका मूक सहचर ;
सामने साकार है पथ-सा असीमित वर तुम्हारा,
है जहां कर्तव्यकी—दुर्दम प्रगतिकी प्राण धारा ;
ठोकरें लगतीं—खड़ा होता मगर गिर-गिर निरन्तर,
एक धुन लेकर रहा निर्माण सौ-सौ बार मिटकर ;
है यही बल स्वप्नपर विश्वासकी होती विजय है,
शीशके ऊपर तुम्हारी मौन ममताका अभय है।'

इसी संग्रहकी एक अन्य कवितामें कवि संघर्षरत होते हुए भी प्रेयसीकी याद बनाये रखता है और कहता है—

'मैं तुम्हें भूला नहीं—जब जब विफलताएं सही हैं।
एक बागीकी जवानी है बगावतके सिवा क्या ?
है सिपाहीकी कहानी जय-पराजयके सिवा क्या ?
मैं सतत संघर्षमें भी तो तुम्हारी याद करता।'

इसी कवितामें कवि अपने संघर्षमें दृढ़ता प्रकट करता हुआ कहता है—

'मिल गया है पथ मुझे रुकना नहीं जो जानता है,
जो न राहीको चलाता आप चलना ठानता है।
साथ चलता है कि जिसके क्रान्तिका तूफान भारी
जो बदल देता जगतको हाथमें ले शक्ति सारी।'

किन्तु आश्चर्य तो तब होता है, जब हम देखते हैं कि 'अंचल' जैसा उत्कृष्ट तथा जागरूक कवि भी नारीको सही अर्थोंमें पुरुषकी सहकर्मिणीके रूपमें नहीं देख पाया। स्वातन्त्र्य संग्राममें भारतीय नारीने भी तो योग दिया था। सन् १९३० के पश्चात् क्रान्तिकारी दलों, जैसे 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' तथा 'चटगांव शस्त्रागार' षड्यन्त्रके नायक मास्टर सूर्यसेनके दलमें भी नवयुवतियोंने अद्भुत साहस और शौर्यका परिचय दिया था। सन् १९४२ की महान जनक्रान्तिमें अरुणा जी प्रभृति जननेत्रियोंने जो ऐतिहासिक कार्य किये हैं, वे भी किसीसे छिपे नहीं हैं। कृषक तथा श्रमिक वर्गोंके हितोंके लिये चलनेवाले संघर्षोंमें महिलाएं कभी पीछे नहीं रहीं। किन्तु नीचेकी कवितामें वह कहता है—

'है यही वह मार्ग जिसने ले मुझे तुमसे छुड़ाया,
मैं न तुमसे मिल यहां जिसमें बिछुड़कर दूर आया।
मिल न सकते जिन्दगी भर भूल भी सकते न क्षणभर,
एक सुखकी हो तुम्हीं पहचान सपनोंकी तृषापर।
रुक न पाया मूक न पाया बाहु झुरमुटमें 'तुम्हारे,

आ गया मैदानमें मैं छोड़ तुमको बेसहारे।
देशसे नूतन रुधिरकी मांगकी परिवर्तनोंने,
तब प्रभंजन वेगसे ललकारकी शोणित कणोंने।
मैं निरन्तर लड़ रहा हूं मैं तुम्हारी याद करता।'

यहां यह खटकता है कि कविने अपनी प्रेयसीको केवल अपने बाहु झुरमुटमें रोकनेवाली और झुकानेवाली माना है। क्या कवि अपने सम्पर्कसे अपनी प्रेयसीको भी संघर्षके पथपर नहीं ला सकता था? यदि उसकी प्रेयसी संघर्षके पथ पर न भी आती तो राजपूत रमणियोंके सदृश विदाके समय अपने प्रेमीके मस्तक पर रक्त चन्दनका टीका तो लगा ही सकती थी और संघर्षमें डटे रहने और विजयी होकर लौटनेके लिये उसका उत्साह तो बढ़ा ही सकती थी। न मालूम कैसे कवि नारीके इस तेजस्वी और अवदात रूपकी उपेक्षा कर गया।

नव संस्कृति नामक कवितामें कवि नव-संस्कृतिको आह्वान करते हुए कहता है कि अब संस्कृति केवल सम्पन्न वर्गोंकी सम्पत्ति न रहकर सम्पूर्ण समाजमें व्याप्त हो जाये। किन्तु नव-संस्कृति नूतन समाज रचनाके बिना विस्तार नहीं पा सकती। नव-संस्कृतिके जन्म तथा विकासके लिये कवि नवीन समाज व्यवस्थाकी स्थापनाके लिये चल रहे संघर्षकी ओर संकेत करता हुआ कहता है—

'तूफ़ान यहां चलते जिनमें यौवनकी नींवें हिल जातीं,
सबकी समताके सपनेके पीछे कितनी जानें जातीं,
है स्वप्न अभी सब जिसके पीछे यह बलिदानोंकी धारा,
जाने कैसा होगा अन्तिम संघर्ष-हितोंका निपटारा!'

अन्य कविताएं श्रृंगारिक हैं। प्रकृतिको भी अंचल जी अपनी प्रेयसीके उपमेयके रूपमें देखते हैं अथवा उसपर नारीत्वका आरोप करते हैं। 'वर्षा गीत' नामक कवितामें वे एक सोहागिनके रूपमें वर्षाका स्वागत करते हैं। उनके अलंकारोंमें भी एक अति नूतन सार्थकता है। निम्नलिखित पंक्तियोंकी व्यंजना कितनी साकार है—

'हिनासे लाल-हाथोंमें लजीले चाँदकी थाली,
दमकती दामिनी ज्यों मांगकी तो इंगुरी लाली।'

'अंचल'ने मानव जीवन एवं मानव प्रकृतिका अति सूक्ष्म अवलोकन किया है और जब वे कल्पनाकी ऊंची उड़ान भरते समय वास्तविकताकी एक हल्की-सी पुट दे देते हैं तो सम्पूर्ण गीतमें मानों प्राण-भर जाता है। एक वियोगिनी सांध्य समय अपने आंगनमें दीपक बालना चाहती है। काले-काले बादलोंसे गगन आच्छादित हो उठा है तो वह सोचती है—

'घिरी पवनकी घटा—चाँदपर लोभी बादल छाये
अभी क्षणोंमें बरसेंगे ये घण्टों झड़ी लगाये
मन्दिरमें हो रही आरती बजती है घड़याली
मेरा तुलसी चौक पड़ा है सांध्य विभासे खाली
सनसन चलती पवन करूं क्या-कैसे दीप जलेगा!'

बादलोंके विशेषण 'लोभी' तथा 'तुलसी चौक'ने इस गीतमें चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

विरही प्रेमियोंको संयोगकालीन उद्दीपन जैसे वसंत चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना आदि विरहकी पीड़ाको तीव्र कर कष्ट पहुंचाते हैं, यह तो सभी कवियोंने माना है। अंचल जी भी उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त सार्थक ढंगसे करते हैं। 'विदाके क्षणोंमें' नामक कवितामें कहते हैं—

'अपने वे पहिचान देशको जब तुम जाने लगतीं कातर
अंगारोंसे होड़ लगातीं तब शशि-किरणें मेरे अन्दर।'

कवि प्रेयसीसे मिलनकी आकुलताको छिपाना नहीं चाहता। वह उसे मुक्त रूपमें देखना तथा पाना चाहता है। प्रेयसीसे पर्दा न करनेका अनुरोध करते हुए वह कहता है—

'संधि-संधिमें जाग्रत सुखकी तारक माल छिपाओ ना
तनमें जाग रहे यौवनके सपनेको भरमाओ ना
जगने मेरी पीर न जानी मैंने उसे जताया कब
छिप न सका पर तुम्हें देखनेका छिपाया कब
मेरी भूखी तन्मयतासे प्राणोंका सौदा न करो
दुनियासे छिपती हो छिपलो मुझसे तो परदा न करो!'

'दीपमुखी मुसकाये जा' नामक गीतमें भी अंचलकी यह मिलन तृष्णा तीव्रतर हो गयी है। विदाकी वेला आसन्न है और वह मिलनके इस क्षणमें अधिक-से-अधिक पा लेना चाहता है—

'नाच रही तेरी स्वरधारामें इन प्राणोंकी नैया
भुज बन्धनमें बांध रही है जिसे तृप्तिकी पुरवैया
पलक पातमें कांप उठा है नव वसंत यौवन सज्जित
झांक रहा है स्वेद कणोंसे नम्र सिंगार लास लज्जित
कौन कहेगा बारबार तू आज न सिरका चीर संभाल
खुल जाने दे अपनी कबरीमें गूंथी सुमनोंकी माल
आज विदाकी वेलामें जी भर आंखोंको भाये जा
कौन कहेगा बारबार तू गाती चल तू गाये जा !'

'मुझसे मेरा प्यार न छीनो' नामक कवितामें कवि अपना सर्वस्व समर्पण करनेको तैयार है; किन्तु वह अपना प्यार किसी पर न्यौछावर कर देनेका अधिकार नहीं खोना चाहता। वह कहता है—

'सब कुछ ले लो किन्तु किसी पर
मिटनेका अधिकार न छीनो !'

अस्तु 'वर्षान्तके बादल' में कवि अंचलके उत्कृष्ट गीत हैं, जिनमें उद्दाम यौवनकी तीव्रता है, मिलनकी आकुलता है और साथ ही विरहकी आशंका तथा उच्छ्‌वास भी। सभी गीत कोमल पद विन्यास युक्त हैं और गेय हैं। भाषा सरल, सहज एवं प्रभावमयी है। वह कहीं भी क्लिष्ट अथवा कर्णकटु नहीं होने पायी। भाषाका चटपटापन कवि अंचलकी अपनी विशेषता है। उन्होंने अनेक नूतन आलंकारिक प्रयोग सफलता पूर्वक किये हैं। यथा—

पावसके लिये—

'गुंथी है जुगनुओंसे मोरपंखी किशमिशी चोली'

अथवा

'कमरमें इन्द्र-धनुषी करधनी सौ बार बल खाती'

शरद्-निशा आकाशमें छिटके तारोंके लिये—

'भर मोतीसे मांग शरदकी राका लगती कितनी सुन्दर।'

उपमाका नूतन चमत्कार भी देखिये—

'शून्यमें निर्जन खड़े ऊंचे महल-सी अनमनी हूं'

सभी दृष्टियोंसे 'वर्षान्तके बादल' एक सुन्दर काव्य कृति है। आज हिन्दी जगत्‌में सरस और सुन्दर काव्यका जो अभाव परिलक्षित हो रहा है; उसे यह एक सीमा तक दूर करनेमें समर्थ होगा, इसमें सन्देह नहीं।

—२६५-१, फूटाताल, जबलपुर, म० प्र०

इस अंककी कविताओंकी समीक्षा

उदयभानु मिश्र 'भानु'

आलोचनाके क्षेत्रमें रुचि वैचित्र्य या विचार पार्थक्यके कारण कतिपय जटिल समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिसके कारण आलोचक प्रायः निष्पक्ष और समदर्शी नहीं रह पाता। ऐसी दशामें जब एक ही वस्तुको एक व्यक्ति किसी एक रूपमें और दूसरा किसी दूसरे रूपमें देखता, समझता तथा प्रकट करता है, यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि वास्तवमें यह वस्तु क्या है, कैसी है और कहां तक अच्छी या बुरी है? विचार पार्थक्य होनेसे मतभेद और विवादकी उत्पत्ति होती है, जिससे किसी प्रकारका निश्चित और सर्वमान्य ज्ञानकी प्रतिष्ठा नहीं हो पाती।

काव्यकी सच्ची परख प्रभाववादियों (Impressionists) के अनुसार उस काव्यानुभूति (Poetic experience) द्वारा होती है, जिसमें ऐसी विशिष्ट आनन्दप्रद रमणीयता रहती है कि उसमें कवि तथा पाठकोंका व्यक्तित्व भी लय हो जाता है। लोकोत्तर आनन्ददायक काव्य रससे इसी रसका तात्पर्य है—किसी रचनाको पढ़नेसे जो आनन्दमय प्रभाव हमारे हृदयपर पड़ता है वही, रचनाकी उत्तमता-नुत्तमताका मानदण्ड है। इसी प्रभावका स्पष्टीकरण समालोचना या समीक्षा है।

योरोपके एक नवीन आलोचक संप्रदाय (School of critics) की आलोचना पद्धतिके अनुसार अभिव्यंजना ही आलोचनाका सार तत्व है। किसी भी आलोच्य रचनामें अभिव्यंजना ही देखना चाहिये, यही वस्तवमें कला है। यदि इसमें अनूठापन या वैचित्र्य है तो रचना सराहनीय है। कोई भी बात या कोई भी भाव कितना ही रुचिर और रोचक क्यों न हो, वह तब तक प्रभावपूर्ण, समाकर्षक और सुखद नहीं प्रतीत होता, जब तक वह विचित्रताके साथ चारुचमत्कृत भाषा तथा चातुर्य-माधुर्यपूर्ण शैली या रीतिसे व्यंजित तथा व्यक्त नहीं किया गया।

आजकल अधिकांश अच्छी आलोचनाएं व्याख्यात्मक, शास्त्रीय और मूल्य सम्बन्धी समन्वयात्मक होती हैं; जिनमें भावपक्ष, कलापक्ष एवं लोकपक्षको समान महत्व दिया जाता है। इस अंककी कविताएं भी इसी समन्वयात्मक आलोचना परम्परासे देखी जानी चाहिये।

इस अंककी प्रथम कविता 'अंचल' जीकी है, जिसमें उनका कवि दैन्य, वैषम्य और अनाचारकी भट्टीमें जलती हुई अपनी प्रेयसीको ढाढ़स बंधा रहा है। उसके सम्मुख जो चित्र है, वह यह है—

> दीख रही मायूसी चारों ओर
> न जिसका छोर
> मरघट-सी आवाज सुनायी देती
> जैसे गिरती गाज

ऐसे समय भी वह कोटि-कोटि चीत्कार करते प्राणोंकी ओरसे दृष्टि हटाकर अपनी दृष्टि अपनी प्रियापर अटका देता है। यहां 'अंचल'के कविकी प्रतिभाका मूल्यांकन किया जा सकता है। बृहदारण्यक उपनिषदमें एक वाक्य है, जिसका भावार्थ यह है कि जब ब्रह्माने अपनेको दो भागोंमें विभक्त किया तो समस्त आकाशमें नारीत्वका भाव व्याप्त हो गया। सृष्टिके मूलमें जो सनातन नारी है, उसीके प्रति 'अंचल'के कविने सदा मधुर गीत गाये हैं। समस्त श्रेष्ठ कलाविदोंने नारीत्वके इस शाश्वत भावको अपनाया है। तथ्यकी बात यह है कि कला मुख्यतः इसी एक भावके आधारपर आधारित है। इसी लिये प्रत्येक कलाविदका मुख्य ध्येय यही भाव प्रदर्शित करनेका रहा है। अब हम

रामायण पढ़ते हैं तो हमारा ध्यान समस्त पाठमें सीताके प्रति केन्द्रीभूत होकर रह जाता है। रामने रावणको मारा इस घटनाका वर्णन पढ़कर हमें रामके वीरत्वका परिचय पानेसे उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि सीताकी मुक्तिसे। इसी प्रकार महाभारतकी कथाका केन्द्र द्रौपदीका चीर-हरण उपाख्यान है। होमरका इलियड, सोफोक्लीज, युरिपिडीज, और शेक्सपीयरकी रचनाएं, कालिदासका अभिज्ञान शाकुन्तल, कुमारसम्भव आदि रचनाएं, टाल्स्टाय, डास्ताएवस्की, गोर्की, शरत और रवीन्द्रनाथके उपन्यास, कविताएं तथा विश्व साहित्यकी प्रायः सभी महान कलाकृतियां सनातन नारीत्वके प्रभावसे ओतप्रोत रही हैं। कविवर अंचलकी आखें भी इसी नारीपर जाकर उलझ जाती हैं और कभी उनका कवि उससे प्यार और अभिसारकी बातें करता है, कभी अपनी लाचारीका रोना रोता है और कभी उसके आंसू पोंछता है। (यद्यपि यह सत्य है कि अंचल नारीको वह पवित्रता और पावनता नहीं दे सके, जो उपरोक्त विद्वान लेखकोंने दी है) निम्न पंक्तियां पढ़कर मानवताका एक नया क्षितिज नजरके सामने उभरने लगता है—एक ऐसा क्षितिज जहां दूरसे दूरतर होती गयी धुंधली पगडण्डीमें अगणित चित्र बनते और मिटते हैं।

फटे दामनमें छाती खोला
लिये अपना दरिद्र यौवन,
नग्न निर्लज्जा नारी आज,
बनी शव-सी नीरव निष्प्राण
त्रस्त दलित पाषाण।

जैसी पंक्तियोंमें घायल, उत्पीड़ित जिन्दगीका एक दर्दनाक चित्र है। कविकी ये पंक्तियां ;—

यहां सड़कोंपर सोये श्वान,
बगलमें पड़ा मुर्दा इन्सान,
बीनते बहती नालीके ग्रास

पढ़कर तो दिलमें एक विद्रोहकी आग भभक उठती है और यहीं कविके शब्दोंमें 'खुलते-इन्कलाबके द्वार' क्रान्तिका बिगुल बज उठता है।

कविने अनाचार एवं वैषम्यका जो चित्र खींचा है। उसे देखकर ऐसा नहीं लगता कि उसने केवल प्रगतिवादके नामपर नारे बाजी की है, बल्कि विषयमें रुखापन होते हुए भी कवि कलाकी रक्षाकर सका है, यह कम गर्वकी बात नहीं है। कविता बहुत ही प्रभावोत्पादक है।

जानकी प्रसाद 'शरद'के गीतमें आराध्य कभी चाँद बन कर प्रेमिकाको रिझाने आता है और कभी बरसते मेघके रूपमें उसे रुलाने आता है, इस परस्पर विरोधी प्रवृत्तिसे पाठक भ्रममें पड़ जाता है। क्या ही अच्छा होता यदि उसमें एक रूपता आ जाती है। 'रातें काली मतवालो-सी बरसा जायेंगी मस्ताई'में 'मस्ताई' शब्द बहुत कुछ हास्यास्पद-सा लगता है। प्रयोगमें 'मस्ती' शब्द ही अधिक आता है, कविके भावोंके साथ उसकी भाषा सहयोग देती नहीं दीखती। अभी कवि भावोंके स्पष्टीकरणमें तथा सौष्ठव एवं प्रवाह लानेमें पूर्ण पारंगत हो गया है, ऐसा नहीं जान पड़ता।

शिवशंकर 'वशिष्ठ'की 'प्यार करता हूं सदा कमजोरियोंको' एक सुन्दर रचना है। कविने एक सार्वभौमिक सत्य (Universal truth) का विश्लेषण किया है। सचमुच आदमी आदमी ही है, देवता नहीं ; इस लिये उसमें त्रुटियोंका होना अनिवार्य है। हमें प्रसन्नता तो तब होती है, जब कवि बहुत ही इमानदारीके साथ इस तथ्यको स्वीकार करता है और इसे अपना (मानवका) गौरव समझकर हर्ष मनाता है ; क्योंकि सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुमें उसे त्रुटियां दीखती हैं :—

आज भी कमजोरियां शृंगार बनकर
नील नभके मोतियोंसे झांकती है,
हिम कणोंके रूपमें गिरकर धरापर
फूल पल्लवके प्रणयको आंकती है
देख लो कमजोरियोंका दाग अब भी
चाँद सीनेसे लगाये घूमता है,
बादलोंके गहन गह्वरसे निकलकर
कौन जाने किस अधरको चूमता है ?

कविता अपनेमें बहुत ही पूर्ण है। हमें 'इससे विशेष सन्तोष होता है कि कवि जो कहना चाहता था, ठीक

ढंगसे कह सका है। किन्तु कहीं-कहीं वह डगमगाता है, जैसे 'ओढ़ करके शेरकी खाल तनपर स्यार बन सकता क्या कभी वीरात्मा है, जैसी पंक्तिमें कविताका प्रवाह शिथिल पड़ जाता है। 'सामने साकीके प्यासा'में 'साकी' शब्द कुछ अट-पट लगता है। जो मस्ती और रंग इस शब्दसे छलकना चाहिये उसका वातावरण कवि उत्पन्न नहीं कर सका है।

'जलदसे धरा'में श्री मधुकर अपनी बात कहनेमें पर्याप्त सफल रहे हैं। जब उनका कवि निर्मोही बादलसे कहता है—

मैंने ही अन्तर फाड़ कसी,
था किया गगनमें रसप्लावन
फूटी पर मेरी ही किस्मत
सूना सूना-सा गृह आंगन,
निरख रहे अपलक प्यारे नम नयन तृषित रतनारे!

तब बरबस पाठककी सहानुभूति कविकी वेदनाके साथ हो जाती है। कवि अपनी लाचारीको पाठकसे स्वीकार करा लेता है। वैसे 'फूटती पपड़ियां'में पपड़ियोंका सम्बन्ध फूटने से दिखाना कुछ ठीक नहीं लगता। फफोले फूटते हैं और पपड़ियां तो जमती हैं या पड़ती हैं, न कि फूटती हैं। कविताका कलापक्ष कुछ निर्बल जरूर है, किन्तु भावपक्ष और लोकपक्षकी कसौटीपर कविता खरी उतरती है।

श्री 'शलभ'की कविता 'किचरी-सी चाँदनी'में चाँदनी रातका वर्णन काफी सजीव हो उठा है। सहज प्रभाव, और प्रवाहकी दृष्टिसे कविता अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, फिर भी एक ही गीतमें एक ही व्यक्तिके लिये कभी 'तेरा' और 'तुम्हारा'के रूपोंके प्रयोग और अपने लिये कभी 'मेरा' और 'हमारा'के रूपोंके प्रयोग बचाये जा सकते थे। 'क्षीर सागर-सा लहरता जा रहा उर 'प्रेम दरिया'में दरिया शब्द कुछ ठीक नहीं जंचता। जो गाम्भीर्य 'क्षीर सागर'में स्थापित किया जा सकता है, वह दरियामें कदापि नहीं किया जा सकता। फिर भी पूरी कवितामें एक सजीवता है।

कुमुद-सी आंखें खुलीं क्या—खुल पड़ी निधि स्वप्नकी सब,
ताजमहलोंसे लगे उठने अरे मिनार-गुम्बज!
और लगता चिर प्रतीक्षा-सी चली तुम आ रही हो,—
उस सुभग 'दालान' पर धरकर मृदुल निज चरण-अम्बुज!
स्कंधपर वीणाधरे अभिसारकी गत जब बजायी—
तो हृदय-भू शान्त हो सुनती प्रणयकी श्याम यमुना!

जैसी पंक्तियोंमें जो भाव-विलास है, वह देखते ही बनता है। किन्तु इसमें भी 'दालान' शब्द खटकता है।

श्री रमाशंकर सक्सेनाका 'मिलनकी रात' एक कोमल गीत है। उसमें उनकी मधुर स्मृतियोंके सजे चित्र हैं। कविने अपनी प्रेम भावनाओंका सम्बन्ध जिस ढंगसे प्रकृतिके साथ किया है, वह सराहनीय है।

उन तारकोंके साथ ही—
मेरे हृदयकी वह कपन
वह प्राण प्रियका साथ मेरे
परिहसन - प्रहसन - हसन,
सुस्मित वदनसे अधर चुम्बन हाथमें
मृदु हाथ री सखि!

जैसी पंक्तियोंमें कविने पूरा चित्र खोलकर सामने रख दिया है। यह दूसरी बात है कि जहां यह प्रश्न उठता है कि कविने समाजको क्या दिया है, वहां एक तर्क-वितर्कका प्रश्न सामने आ जाता है।

व्रजेन्द्रपाल सिंहकी पूरी कविता पढ़ जानेके बाद भी ऐसा लगता है, जैसे कवि अपनी पूरी बात नहीं कह पाया है। ऐसी इच्छा होती है कि कविको अपनी बात पूरी करनेके लिये कुछ और पंक्तियां कहनी चाहिये थीं। वैसे कविने आदर्श प्रेमके जो उदाहरण रखे हैं, वे बहुत ही फबते हुए हैं। शैलीमें स्वाभाविकता है और रचना काफी सरल है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रचयिता अपने दृष्टिकोणमें पर्याप्त स्पष्ट है। यह एक बहुत ही शुभ लक्षण है।

मनमोहन 'सरल'के गीतकी प्रत्येक पंक्तिमें एक अजीब-सी मस्ती छायी हुई है।

मैं तुम्हारी गर्म मांसल बांहकी पहचान कर लूं
इसलिये ही हर डगरकी धूल अब तक फांकता हूं।

जैसी पंक्तियां पढ़कर मन बरबस ही झूम उठता है।

सह घुंघराली अलक-सी सामने बिखरी पड़ी,

श्वांस कन्धोंपर उमरका बोझ ले आगे बढ़ी,
पांव चलते थक गये पर उम्र दो डग ही चली,
जिन्दगीको प्यारकी हर बांहसे राहत मिली।

जैसी पंक्तियोंमें जो ललित लावण्य, सरस कान्ति एवं सुन्दर-सुखद भावनाओंकी मार्मिक अनुभूति है, उसपर मन अनायास ही रीझ जाता है। किसी भी कविताकी सबसे बड़ी शक्ति उसकी गति और स्वाभाविकता है। 'सरल'के इस गीतमें यह स्वाभाविकता देखते ही बनती है। कवितामें ओज और प्रसाद गुणका बाहुल्य है।

'हे वसन्तके दूत' एक प्रगतिवादी कविता है। प्रगतिवादी कविताओंके विरोधमें यह कहा जाता है कि उनमें वर्ग संघर्षकी कटुता होनेके कारण शालीनताका नितान्त अभाव होता है और इसी कारण उनका कलापक्ष भी सबल नहीं होता, किन्तु गोविन्द श्रीवास्तवकी इस कविताको देखकर यह धारणा निर्मूल जान पड़ती है। सचमुच जहां जन-जीवन अभी वैषम्य, दैन्य और अनाचारकी भट्ठीमें जल रहा हो, वहां एकांगी, क्षणिक वसन्तका स्वांग रचानेका अर्थ ही क्या है? असली बसन्त तो वही कहा जा सकता है, जब इस धरतीका तृण-तृण हरा हो जाये और सभी आह्लादमें भरकर फागुनी गीत गा उठें। इसी लिये जब कवि ये पंक्तियां कहता है—

चहुं ओर जगतमें भीषणता,
पैशाचिकता जनरव डरता,
मानव मानवको डसनेको,
अपना पैना फन फैलाता,
धरतीने त्यागी कोमलता
तब हे बसंतके दूत-मृदुल दल—
कह दो उससे
इस धरणीपर
अभी नहीं-अपना साज सजाये।

तब हमें कोई आपत्ति नहीं होती और हम उसके विचारोंके साथ अपना समर्थन दिखाने लगते हैं। वैसे कविताकी शैली भावोंके अनुकूल है और सहज-सरल शैलीके साथ स्पष्टवादिताकी दृष्टिसे कविता काफी सुन्दर है। इसका सम्मिलित प्रभाव भी पाठकोंपर जमकर पड़ता है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

'जब नीले अम्बरकी गोदी मेघोंसे भर जाती होगी,
सच कहना तब तुमको मेरी क्या याद नहीं आती होगी,

पंक्तियां पढ़ते ही मुझे परदेशीका गीत याद आ गया 'घिरती घटा तुम्हें प्रिय मेरी याद दिलाती होगी' और भी कई कविताएं मैंने इधर इस ढंगकी देखी हैं, अतः सुरेन्द्र-मोहन मिश्रका यह गीत मुझे कुछ नवीन नहीं लगा। फिर भी प्रवाह और सौष्ठवकी दृष्टिसे यह गीत पर्याप्त सुन्दर बन पड़ा है। कविका यह गीत सचमुच उसके हृदयसे निकला हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि इसमें वह स्वाभाविकता आ सकी है, जो प्रयाससे की गयी कविताओंमें आनी असम्भव है। गीतमें अभिव्यक्तिकी जैसी दक्षता है, उसे देखकर यह सहज ही अनुमान लग जाता है कि कविको गीत लिखनेका अच्छा अभ्यास है।
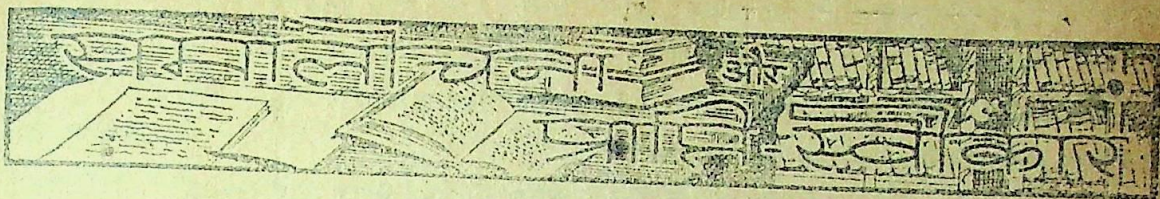
सागर, लहरें और मनुष्य—लेखक : उदयशंकर भट्ट
प्रकाशक : मसिजीवी प्रकाशन—नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या : ३११, मूल्य : चार रुपये आठ आने।

श्री उदयशंकर भट्टका यह नया उपन्यास है। उपन्यास की कथा बम्बईके निकट एक ग्राम बरसोवाके मछलीमारोंके जीवनपर है। कथा रत्ना और यशवन्तके परिवारोंसे उद्गम लेकर रत्नाके गतिमान व्यक्तित्वके सहारे उस वैभवशाली नगरीमें फैल जाती है। समुद्रकी मछलियां मारकर जीविकोपार्जन करनेवाले और उसके प्रलयंकर रूपसे संघर्षके लिये सदैव समुद्यत रहनेवाले इस समाजमें जीवनके प्रति एक आस्था है। इसी समाजके एक सम्पन्न परिवारकी कन्या है रत्ना, जिसने मछलीमारोंकी परम्पराके विरुद्ध एफ० ए० तक शिक्षा पायी है। अर्धशिक्षिता रत्नाका अन्धा यौवन उसे बरसोवाके मलिन जीवनसे छिन्न कर शहरी ऐश्वर्यके सपनोंमें खो जानेकी प्रेरणा देता है। महाभारतकी मत्स्यगन्धाकी तरह वह किसी शान्तनुसे परिणय कर अपने जीवनको सिक्त करनेकी साध रखती है। रत्नाके अन्तरमें समुद्र-सा उद्वेग है और वैसी ही चंचल लहरोंसे उसका मन आन्दोलित रहता है। माणिक और अपने बालसखा यशवंतके बीच चुनाव करनेमें पहले वह कुछ झिझकती है। एक दुर्बल किन्तु बाहरी चमक-दमकसे सम्पन्न है, दूसरा सबल परन्तु अपढ़ है। अन्तमें रत्नाको बरसोवाके संकीर्ण और नीरस जीवनसे माणिक निकलता है। वह माणिक का वरण करती है। किन्तु बम्बईमें पदार्पण करनेके साथ ही संघर्षमय जीवनका सूत्रपात होता है। बारसोवाका जीवन संकुचित था तो बम्बईका जीवन घात-प्रतिघातका द्योतक जान पड़ता है। माणिक, कान्तिलाल, शंकर, रामू, सारिका, धीरूवाला आदिके साथ उसके जीवनका सूत्र अबाध गतिसे आगे बढ़ता है। वह ठोकर खाती है, गिरती है; पर फिर उठकर चलती है। नये रास्तोंके प्रति उसे वितृष्णा होती है; परन्तु वापस लौटाना असम्भव है। यशवन्तके प्रति उसका स्नेह अक्षुण्ण रहता है, परन्तु अपने कलंकित जीवनको वह अपने निरीह प्रेमीसे दूर रखना चाहती है। वह परिस्थितियोंसे जूझती है। अन्तमें परिस्थितियोंसे पराभूत हो आत्मघातके मार्गपर दृष्टि डालती है तो डाक्टर पांडुरंग उसके त्रस्त जीवनको पुनः नयी आशा और नयी चेतनासे भर देता है। नारीके 'पाप'की चादर अपने ऊपर ओढ़कर वह उसे चिन्ताओं और आशंकाओंसे मुक्त कर देता है। उपन्यासकारने आजके जटिल, स्वार्थान्ध एवं लोलुप जीवन द्वारा दलित आस्थाको पुनः प्रतिष्ठित किया है। वह मानवतामें पाठकका विश्वास डिगने नहीं देता; वरन् उसे और बद्धमूल करता है। इसमें उसे स्तुत्य सफलता मिली है।

लेखकने सभी प्रकारके पाठकोंके लिये सामग्री दी है, इसे वह स्वयं अस्वीकार नहीं कर सकता। रंगीनी चाहनेवालोंके लिये वह प्रथम पृष्ठमें ही मछली-मारोंकी युवती स्त्रियोंकी ओर बढ़ गया है और लिखता है: 'उनकी मैली-कुचैली अंगियोंमें छिपे भूधरोंपर कामका नाग कभी-कभी फनफना उठता।' यह बानगी तो प्रथम पृष्ठकी है, अन्यत्र भी यौन-समस्याओंको खूब बिखेरा गया है। बंशी और जागला, बलिकर और इट्ठा आदिके अनुचित सम्बन्धोंके चित्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। लेखकने ऐसे चित्रोंकी भरमार क्यों की, यह एक प्रश्न है; जब वह स्वयं १८३ पृष्ठमें लिखता है : 'अंग्रेजी उपन्यासोंके पात्र उसकी आंखोंमें वासनाकी धार बरसाने लगे। अविकसित मनकी ग्रन्थियोंमें उत्तेजना उठने लगी। नये सपनोंसे उसका हृदय भर उठा।'

वस्तुतः पुस्तकके कितने ही स्थान वासनाकी धार बरसानेवाले हैं, फिर भी लेखककी निपुण लेखनीने कहीं अधिक भद्दापन नहीं आने दिया, इसलिये उसकी पीठ ठोंकी जा सकती है।

शैलीकी दृष्टिसे लेखकने एक नया, किन्तु अत्यन्त अवैज्ञानिक तथा राष्ट्रभाषाको हानि पहुंचानेवाला रास्ता अपनाया है। उसके महाराष्ट्री पात्र आपसमें उस टूटी-फूटी हिन्दीमें बात करते दिखाये गये हैं, जिसमें महाराष्ट्री हिन्दी भाषा-भाषियों से बातचीत करते हैं। सारी बातचीत सरल हिन्दीमें ही होनी उचित थी, क्यों कि वह सरल मराठी बोलनेवालोंकी बातचीत है। किसी प्रदेशको आधार बनाकर जब कोई उपन्यास लिखा जाये तो क्या उस प्रदेशके पात्रोंकी बातचीत उस टूटी-फूटी हिन्दीमें हो, जैसी उस प्रदेशके लोग बोला करते हैं? ऐसा करनेसे तो अशुद्ध हिन्दीको प्राश्रय देना होगा। भट्ट जीका नाम सुनकर यदि कोई बंगाली सज्जन उनके इस उपन्यासको पढ़कर हिन्दीका कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो उसके क्या हाथ लगेगा? वह 'चांगला', 'बूम' आदि शब्दोंके भंवर से बचनेके लिये अभिधानका सहारा लेनेके जितने भी प्रयत्न करेगा, सब बेकार जायेंगे। अन्तमें वे यही कहेंगे कि हिन्दी कई तरहकी है और भट्ट जी बम्बईवाली हिन्दी लिखते हैं। एक मराठी और दूसरा हिन्दी भाषा-भाषी हो तो महाराष्ट्री पात्रके मुंहसे टूटी-फूटी हिन्दी बुलवायी जा सकती है, किन्तु जब बातचीत करनेवाले सभी महाराष्ट्री हों, तो सरल हिन्दी ही चल सकती है। हमें आशा है कि भविष्यमें भट्ट जी बम्बइया हिन्दीके सहारे अपने किसी उपन्यासको पार न लगाना चाहेंगे।

इस उपन्यासकी कथा-वस्तु व्यवस्थित है। इसके तन्तु कहीं भी बिखरे नहीं हैं। कथा और उसके कहनेका ढंग रोचक है। मछलीमारोंके कठोर जीवन, उनके त्योहारों, उत्सवों, अशिक्षाके कारण छोटी-छोटी बातोंको लेकर लड़-भिड़ जानेकी प्रवृत्ति आदिका बड़ा यथार्थ चित्रण भट्ट जीने प्रस्तुत किया है। असफल प्रेमी यशवन्तका अन्ततः रत्नाको 'बहन' कहकर सम्बोधित करना कुछ बलात्कार-सा लगता है। एक सुदीर्घ अवधिके बाद भट्ट जी उपन्यास रचनाकी ओर प्रवृत्त हुए हैं और अल्प समयमें ही उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, आदिकी दृष्टिसे उनका यह उपन्यास अत्यन्त सफल है, किन्तु उनकी नयी शैलीने आधेसे अधिक पृष्ठोंको आवर्जनासे भर दिया है।

—सच्चिदानन्द शर्मा

कालेर विचार (बंगला नाटक)—लेखक : श्री बंकिमचन्द्र दास, प्रकाशक : विभूतिभूषण दास, २१[१]श्यामनगर रोड, (दमदम) कलकत्ता ; प्राप्तिस्थान : डी० एम० लाइब्रेरी, बंगाल पब्लिसर्स, मूल्य : दो रुपये।

बंकिमचंद्र एवं शरतचंद्र बंगालके दो महान उपन्यासकार थे। उन्होंने अपने प्रखर एवं अपार बुद्धिके बल बंगला सहित्यको ही धनी नहीं बनाया बल्कि भारतकी अन्य भाषाओंपर भी विशेष प्रभाव डाला।

बंकिमचंद्र एक आदर्शवादी थे। उदाहरणके लिये हम उनके उपन्यास 'कृष्णकांतेर विल'में यह देखते हैं कि वे गोविन्द लाल और रोहिणीके प्रेम सम्बंधमें पूर्णरूपेण न्याय नहीं कर सके, क्योंकि रोहिणी एक विधवा है और गोविंदलाल पहले ही भ्रमरसे विवाह बन्धनमें बंध चुके हैं। दूसरी ओर शरत्चंद्रने अपने उपन्यासोंमें आधुनिक समाजके नैतिक स्तरपर विवाद किया है। 'पल्ली समाज'में उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि रमाके विधवा होते हुए भी क्या हम रमेश और रमाके प्रेमसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर सकते हैं? अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकान्त'में राजलक्ष्मीकी ओरसे—जो वर्तमानमें एक नारीत्वमें फूलके समान, किन्तु अपने पिछले जीवनमें परिस्थिति वश एक पतिता थी—वकालत की है। अन्तमें 'शेष प्रश्न'में कमलके द्वारा आधुनिक समाजमें स्त्री-पुरुषके प्राकृतिक सम्बन्धपर प्रश्न उठाया है। इस प्रकार इन दो लेखकोंकी कृतियोंके गूढ़ अध्ययनोंसे बंकिमचन्द्रका आदर्शवाद और शरतचन्द्रकी दया और मानव जातिके प्रति सहानुभूति प्रत्यक्ष हो जाती है।

'कालेर विचार' नाटकमें दोनों लेखकोंके जीवन एवं साहित्यके तत्वज्ञानका भली भांति समावेश किया गया है, जो ठीक-ठीक जार्ज बर्नार्डशा अथवा महान फ्रेंच नाट्यकार

श्रीओंकी याद दिलाता है। विषयकी विचित्रता एवं साहित्यकी दृष्टिसे यह बंगलाके अन्य नाटकोंसे वास्तवमें बढ़कर है। यह एक इतिहास है, एक नीतिशास्त्र अथवा 'बंकिमचन्द्र तथा शरतचन्द्रकी कलाओंके अन्तर-भेदका एक अध्ययन है। सबसे बढ़कर यह एक अपूर्व नाटक है, जो केवल नाटक करनेके लिये ही नहीं, बल्कि पढ़नेमें भी आनन्ददायक एवं शिक्षासन्निधपूर्ण है।' हम साहित्य प्रेमियोंसे बंकिमचन्द्र दास द्वारा लिखित इस नाटकको पढ़नेका अनुरोध करते हैं।

—भूपनारायण मिश्र

त्रिपथगा (मासिक)—सम्पादक : श्री काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर', प्रकाशक : सूचना-संचालक, उत्तरप्रदेश सरकार, पृष्ठ लगभग १४०, मूल्यः दस आने।

उत्तरप्रदेश सरकारके सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित 'त्रिपथगा'का तीसरा अंक हमारे सन्मुख है। इस मासिक पत्रिकाका प्रकाशन इस बातका जीवंत प्रमाण है कि केन्द्रीय सरकारके साथ-साथ अब प्रान्तीय सरकारोंने भी जनताके मानसिक और सांस्कृतिक उत्थानकी आवश्यकता अनुभव की है।

'त्रिपथगा' एक कला, विज्ञान और संस्कृति प्रधान साहित्यिक मासिक पत्रिका है। उसीके शब्दोंमें उसका लक्ष्य राजनीतिके कोलाहल-कलहसे दूर स्वस्थ, प्रेरक और जीवंत साहित्यका सृजन करना है। इस अंककी सभी रचनाओंका चयन इसी लक्ष्य-विशेषको सन्मुख रखकर किया गया प्रतीत होता है। 'विश्वका स्वरूप', 'फासिलकी खोजमें', 'दुस्साहसी यान चालक ब्रिजमैन' अधिकारी विद्वानों द्वारा आधुनिक विज्ञान और उसकी प्रगतिसे सम्बन्धित लेख इसमें हैं। विषय प्रतिपादनका ढंग परिचयात्म तथा शैली रोचक है, जिससे पाठक ऊबता नहीं। 'हिन्दी और हिन्दका भविष्य' तथा 'हिन्दी सेवाके दो क्षेत्र' लेखोंमें श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी तथा श्री कालिदास कपूर जैसे श्रेष्ठ विद्वानोंने हिन्दी भाषियोंको कई उपयोगी और सामयिक सुझाव दिये हैं। 'एकांकी नाटकोंकी परम्परा', 'विश्वका विशाल नाट्य गृह', 'लोक कहानियोंमें लोक मंगल', 'ब्रजकी रास लीलाएं', 'संस्कृति और राजकीय संरक्षण' आदि कला और संस्कृतिके विभिन्न पहलुओंपर लिखे गये लेख हैं। श्री रामचरण 'महेन्द्र'ने मैक्समूलर, कीथ, लिवि प्रभृति पाश्चात्य विद्वान तथा आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल प्रभृति हिन्दी विद्वानोंकी सम्मतियोंका समर्थन करते हुए अपने लेखमें एकांकी नाटकोंकी परम्पराका प्रारम्भ वैदिक साहित्यसे माना है। श्री यज्ञदत्त शुक्ल अपने संस्मरण 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी'में अपने प्रतिपाद्य विषय द्विवेदी जीसे अधिक स्वयंके बारेमें लिख गये हैं। श्री गिरिजाकुमार माथुरका 'जो सुख चौबोर न बलख बुखारे' अंगरेजीके व्यक्तिगत निबन्ध (Personal essay) की पद्धतिपर लिखा गया है और प्रसिद्ध आंग्ल निबन्धकार ए० जी० गार्डीनरकी याद ताजी कर देता है। निराला जीकी कविता 'सीधी राह मुझे चलने दो'में एक हारे हुए खिलाड़ीके पराजय और पश्चातापका स्वर स्पष्ट है। हिन्दीके युगान्तकारी कवि 'निराला'की विद्रोही लेखनीसे ऐसी कविताओंका निकलना उनके वर्तमान जीवनकी विभीषिकाओंको उभारकर सामने खड़ा कर देता है। 'त्रिपथगा'की कहानियोंका पलड़ा बहुत हल्का पड़ता है। श्री भगवतीचरण वर्माकी सिद्ध लेखनी भी मुंशी शिवलालकी किन्हीं विशेष चारित्रिक विशेषताओंके उद्घाटनमें सफल नहीं हो सकी। इसी प्रकार 'कच और देवयानी'में श्री रामप्रसाद त्रिपाठी इस जाने-माने पौराणिक प्रसंगको कहानीका रूप नहीं दे सके। केवल इतिहासकी घटनाकी तरह उसे दुहरा गये हैं। श्री विजयकुमार मिश्रकी कहानी 'धराका ध्वंस' आजकी वैज्ञानिक प्रगतिपर आधारित है; किन्तु अभी अपूर्ण होनेके कारण मूल्यांकनकी अपेक्षा नहीं रखती। फिर भी उत्तर प्रदेशीय सरकारका यह प्रयास स्तुत्य और अन्य प्रांतीय सरकारों द्वारा अनुकरणीय है। यह निश्चित है कि यदि यह पत्रिका अपने घोषित लक्ष्यके अनुसार अन्ततक दलगत 'राजनीतिके कोलाहल-कलहसे दूर' रहनेमें सफल हो सकी, तो हिन्दीकी पत्रिकाओंमें अच्छा स्थान बना लेगी। सर्वसाधारणके लिये सुलभ इसका मूल्य दस आने भी सभी दृष्टियोंसे समर्थनीय है।

भारतकी लोक-कथाएं—सम्पादिका : सावित्री देवी वर्मा, प्रकाशक : पब्लिकेशन्स डिवीजन, पृष्ठ संख्या ९२, मूल्य : एक रुपया ।

भारत लोक-कथाओंका भण्डार है। प्रस्तुत पुस्तककी ये कथाएं पुरानी होनेपर भी नयी हैं। इन कथाओंमें जनपदके समाजिक जीवनका इतिहास दिया हुआ है। किसी भी देशकी लोक-कथाओंको पढ़नेसे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि वहां किसी समय किसी भी वर्ग, संस्था तथा जातिकी स्थिति क्या थी अथवा आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक अवस्था कैसी थी। कहानी मनुष्यके लिये विश्रान्तिका अपूर्व साधन है। यदि इस दृष्टिसे देखा जाये तो लोक-कथाएं ही सदियोंसे मनुष्योंका मनोरंजन करती आयी हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें २३ कहानियां हैं, जो प्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखी गयी हैं। सबसे अच्छी विशेषता तो इस पुस्तकमें यह है कि इसकी 'सेवाका पुरस्कार' नामक कहानी एक बाला लेखक द्वारा लिखी गयी हैं, सम्पादिकाके इस प्रयाससे देशके बच्चोंपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। भाषाकी दृष्टिसे भी यह पुस्तक कम महत्वपूर्ण नहीं है। पुस्तककी छपाई-सफाई अत्यन्त ही सुन्दर है। पुस्तकका मूल्य भी अत्यन्त कम रखा गया है, अतः इसका अच्छा प्रचार हो सकेगा, ऐसी आशा की जा सकती है। पब्लिकेशन्स डिविजन प्रायः बच्चोंके लिये सुन्दर तथा अल्प पैसोंकी पुस्तकें प्रकाशित करता चला आ रहा है। इस प्रकाशनसे हिन्दी बाल-साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमी दूर हुई है।

—कान्ती कुमार अवस्थी

पदचिह्न—लेखक : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशक : चौखम्भा विद्याभवन, (चौक) बनारस, मूल्य : दो रुपये ।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीकी प्रसिद्ध पुस्तकका यह द्वितीय संस्करण है। पुस्तक स्वाधीनताके पूर्व लिखी गयी थी। लेखकने अपनी स्वर्गीया बहनके व्यक्तित्वको केन्द्रबिन्दु बनाकर भारतीय जीवन और आजकी समस्याओंको स्पर्श किया है। उसका कथन है कि भारतीय संस्कृति धार्मिक स्थानोंमें जड़ हो गयी है और कला भी बन्दिनी बनाकर प्रदर्शनकी वस्तु हो चली है। जब तक संस्कृति और कला हमारे जनजीवनको स्पर्श कर उसे सशक्त तथा गतिमय नहीं बनाती, तबतक उसका कोई महत्व नहीं। इसी लक्ष्यको सम्मुख रखकर लिखी गयी यह संस्मरणात्मक पुस्तक क्रान्तिका आवाहन करती है। यह कृत्रिम सभ्यतासे हटाकर मानवको सहृदयता तथा शालीनताकी ओर लौटा ले आना चाहती है। धार्मिक प्रवंचना, सामाजिक बाह्याडम्बर की लेखकने विचारयुक्त भर्त्सना की है और आह्वान किया है, एक क्रान्तिकारी सामाजिक अभ्युत्थानका। इस सम्बन्धमें चिन्तन और मननशील लेखकने जिस कार्यक्रमका संकेत किया है, उस ओर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये। लेखककी भाषा, शैली और तर्क एवं अभिव्यंजनाकी पद्धति सदाकी भांति अपनी विशेषता रखती है। पुस्तक मननीय है।

—राजेन्द्र भारती

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता ।

विशाल भारत

के

प्रति अंककी विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
" आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
" चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
" चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा कालम	७०)
" " आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
" " आधा पृष्ठ	४०)
" " चौथाई पृष्ठ	२५)
अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	७०)
" तीसरा पृष्ठ	८०)
" चौथा पृष्ठ	१२५)
" चौथे पृष्ठका दूसरा कालर ३०) फी कलर	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
" आधा पृष्ठ	५५)
" चौथाई पृष्ठ	२८)
" चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९३⁄४×७ इञ्च
(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,
कलकत्ता ९